6232

मुण्डारी भाषा एवं लिपि

क्त	त्म	म्न	द्व
कत	तम	मन	दव









संकलनकर्तृ
प्रो० लगनी हेरेंज, (सेवानिवृत्त)
हिन्दी विभाग, डोरण्डा महाविद्यालय, राँची

मुण्डारी-भाषा एवं लिपि



लेखिका
प्रो0 लगनी हेरेंज, (सेवानिवृत्त)
हिन्दी विभाग
डोरण्डा महाविद्यालय, राँची

मुण्डारी–भाषा एवं लिपि

रचयिता	:	**प्रो0 लगनी हेरेंज**
स्वत्वाधिकार	:	लेखकाधीन
प्रकाशक	:	मुण्डा–समाज पुस्तक प्रकाशन–केन्द्र, राँची झारखण्ड)
विक्रय एवं प्रसार समिति	:	भारत मुण्डा–समाज, राँची, झारखण्ड, भारत
प्रथम संस्करण	:	2018
मूल्य	:	100 / –
आवश्यकता	:	मुण्डारी–लिपि, व्याकरण, भाषा एवं साहित्यिक अनुसंधान का मौलिक–अधिकार

प्रधान कार्यालय :

भारत मुण्डा–समाज, मोराबादी स्टेडियम के पश्चिम,
पोस्ट–मोराबादी, थाना–लालपुर, राँची (झारखण्ड)

शाखा कार्यालय :

स्व0 अर्जुन टुटी, अधिवक्ता का आवास
सरना टोली, हतमा, पोस्ट–राँची यूनिवर्सिटी,
थाना–लालपुर, राँची (झारखण्ड)
मो0 9430392022
एवं
जनजातीय एवं क्षेत्रीय – भाषा पुस्तक केन्द्र
बनियाटोली, टैगोर हिल रोड
मोराबादी, राँची (झारखण्ड)

अपनी कलम से



मुण्डारी–लिपि की खोज मेरी दृढ़ इच्छा एवं सतत् प्रयत्नशील बने रहने का प्रतिफल है। 80–90 के दशक में सुन्दरगढ़, उड़िया निवासी स्व0 सुकरा मुण्डा अपने एक सहयोगी के साथ राँची न्यायालय में काम के सिलसिले में एवं राँची में रह रही अपनी दो बेटियों से मिलने के लिए आते थे तो मेरे पति अधिवक्ता स्व0 अर्जुन टुटी के सरनाटोली हतमा स्थित उनके आवास में अवश्य आते थे। मैं उनके लिए उनकी पसन्द के अनुसार नमक रहित सब्जी बनाती थी, जिसमें वे स्वयं प्राकृतिक नमक डालकर खा लेते थे। वे जब भी आते थे काम की ही बातें करते थे। वे स्वयं बनायी मुण्डारी–लिपि की प्रति मेरे पति स्व0 अर्जुन टुटी को दिखाते थे। मैं भी उनकी सोच एवं कल्पना की तारीफ करती थी, किन्तु मेरे मन में यह बात कभी नहीं आई थी कि मैं उनसे कुछ सीखूँ कि भविष्य में मुण्डारी–भाषा पर काम करने की मेरी इच्छा होगी। कुछ सालों के बाद सुना कि उनकी मृत्यु हो गई है। तब बड़ा अफसोस हुआ। काश! मैं उनसे कुछ सीख पाती। उसके बाद उनकी यादें रह गई थीं।

स्व0 सुकरा मुण्डा सुन्दरगढ़, उड़ीसा के उच्च शिक्षा प्राप्त प्रसिद्ध अधिवक्ता थे। ईसाइयों के सम्पर्क एवं प्रभाव में आकर वे ईसाई बने थे, वे पादरी भी रह चुके थे। वे चिन्तनशील नेता एवं समाजसेवी थे। आजादी के पूर्व स्वतंत्रता आन्दोलन में उन्होंने बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया था एवं स्वतंत्रता आंदोलन में हिस्सा लेने वाले बड़े–बड़े नेताओं को अपने यहाँ ठहराते थे एवं उनकी सेवा में जो बन पड़ता था, वे करते थे। राजनीति में रुचि के साथ–साथ मुण्डारी भाषा एवं साहित्य की प्रगति के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहते थे।

स्व0 सुकरा मुण्डा जब भी राँची आते, डॉ0 रामदयाल मुण्डा जी से बिना मिले वापस सुन्दरगढ़ नहीं जाते थे। उनके साथ मुण्डारी भाषा साहित्य से संबंधित बातें होती थीं। उस समय डॉ0 रामदयाल मुण्डा जी राँची विश्वविद्यालय के जनाजतीय एवं क्षेत्रीय भाषा–विभाग के विभागाध्यक्ष हुआ करते थे। वे नाच–गान, कला एवं संस्कृतिप्रेमी थे, साथ ही मुण्डारी पद्य–विधा के पुरोधा थे। इतना ही नहीं उनकी कविताएँ गाना का रूप

धारण कर लेती थीं। वे स्वयं बांसुरीवादक थे। उनकी बाँसुरी की मोहक ध्वनि सुनकर श्रोता मंत्रमुग्ध हो जाते थे। उतनी ही दक्षता के साथ नगाड़ा बजाकर नाचते एवं गाते भी थे।

मुण्डारी लिपि का ज्ञाता स्व0 सुकरा मुण्डा एवं कला–संस्कृति एवं मुण्डारी–साहित्य के विद्वान् डॉ0 रामदयाल मुण्डा के नहीं रहने पर मुण्डारी –साहित्य दिशाविहीन हो गई है। समय बदलता गया, बड़ी–बड़ी चुनौतियों का सामना करने का वक्त आया, तब चिन्ता होने लगी कि हमारी लिपि आखिर कहाँ खो गई या किस अंधेरे में लुप्त हो गई। आदिवासी भारत के सबसे प्राचीन एवं आदिनिवासी हैं। ये आदिनिवासी ही आर्यावर्त, सिन्धु –स्थान, हिन्दुस्तान या भारत के आर्य हैं, लेकिन भाषा वैज्ञानिकों ने अनार्य एवं आर्य की परिभाषा को बदल कर आदिवासियों के इतिहास के साथ छेड़छाड़ कर अर्थ का अनर्थ कर दिया है, जिससे आदिवासी समुदाय अनविज्ञ है। पुरातात्विक विभाग के सर्वेक्षणकर्त्ताओं ने खोज निकाला है कि भारत की मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा–सभ्यता मुण्डाओं की सभ्यता थी। शिलालेखों एवं जमीन की ऊपरी सतह पर बिखरे पड़े उनके अवशेषों को देखकर आश्चर्य होता है कि ये अवशेष ही तो मौन भाव से उन्नत–सभ्यता के इतिहास बयां कर रहे हैं। इतिहास की गहराई में जाने के लिए खोज करने या अनुसंधान कर मुण्डाओं के इतिहास को दुबारा लिखने की आवश्यकता है, तभी हमें पुरातन इतिहास की जानकारी प्राप्त हो सकेगी।

मैं हिन्दी विभाग की विभागाध्यक्षा के पद पर कार्य कर 2012 ई0 में सेवानिवृत्त हुई हूँ। कॉलेज में कार्यरत रहते हुए अत्यन्त व्यस्तता के कारण उल्लेखनीय कार्य नहीं कर सकी, जिसका मुझे काफी मलाल है, लेकिन कुछ प्रेरक बातें मन को जागृत कर देती हैं कि पढ़ने–लिखने की कोई उम्र नहीं होती, किताबों से जुड़े रहना समय व्यतीत करने का सबसे बढ़िया जरिया होता है।

इस समय मुण्डारी–भाषा एवं मुण्डारी–लिपि की बातें हो रही हैं। मुण्डारी–लिपि की उपयोगिता को हमने पुरानी वस्तुओं की तरह नकार दिया है, हमें उसके महत्व पर गौर करना आवश्यक है, उसे पहचानने की जरूरत है। मुण्डारी–लिपि हमारे ही आस–पास अनजानी बनी हुई है। सचमुच देवों की वाणी ही आज देवनागरी बनी हुई है अर्थात् वह देवताओं

एवं सभ्य नागरिकों की भाषा बन चुकी है। 'देव' का तात्पर्य देवताओं से है एवं 'नागरी' का तात्पर्य सभ्य नागरिकों से है। यदि लिपि का नामकरण देवताओं से संबंधित है तो अवश्य इसका संबंध मुण्डारी लोक–कथा भेलवा–फारी पूजा (सोसो–बोंगा) से है।

पृथ्वी पर एकाधिकार के लिए जब देवता एवं दानवों के बीच वर्चस्व की लड़ाई लड़ी जा रही थीं, असुरों द्वारा दिन–रात लोहा गलाने के कारण पृथ्वी गर्म हो गयी थी, पेड़–पौधे झुलस रहे थे, नदी–तड़ाग सूख रहे थे, पशु–पक्षियों को खाने की कमी हो गई थी, पृथ्वी में त्राहि–त्राहि मच गई थी, पृथ्वी का संतुलन बिगड़ गया था। पृथ्वीवासियों की दयनीय दशा देखकर भगवान भी द्रवित हो गए थे। तब भगवान ने दिन–रात लोहा गलानेवालों को समझाने के लिए पक्षियों के कई जोड़ों को कई बार दूत बनाकर उनके पास भेजा कि "वे दिन–रात लोहा न गलाएँ, बल्कि दिन में गलाएँ तो रात में बन्द करें। यदि रात में गलाएँ तो दिन में बन्द करें, क्योंकि रात–दिन लोहा गलाने के कारण पृथ्वी गर्म हो गई है, आकाश धुआँसा एवं धूलमय हो गया है, पृथ्वी का संतुलन बिगड़ गया है।"

उन्होंने भगवान के संदेशवाहकों की एक न सुनी, बल्कि उन्हें लात मारकर बेइज्जत कर भगा दिया कि "हम किसी की बातें नहीं सुनेंगे, हम ताकतवर बाहुबली हैं, हम बहुत भाई–बन्धु हैं, हमारी मोटी–मोटी बाहें हैं, केले के थम्ब के समान हमारे पैर हैं, हम दिन–रात लोहा गलाते हैं, हम लोहे का ही काम करते हैं, हम किसी से डरते नहीं, कौन भगवान की बातें करते हो, हमसे शक्तिशाली पृथ्वी में कौन है इत्यादि–इत्यादि कहकर भगवान के पक्षी रूपी संदेशवाहकों की बातें मानने से इन्कार कर दिया। ऐसा वाद–विवाद कर भगवान के संदेशवाहकों को दुत्कार कर, लात मार कर भगा दिया। अपमानित संदेशवाहक निराश एवं दुःखी होकर भगवान के पास लौटकर अपनी व्यथा सुनाते हैं।

भगवान उनकी अहंकार भरी बातें सुनकर क्रोधित हो गए। भगवान असुरों का दर्प चूर करने के लिए पृथ्वी पर अवतरित होने का निश्चय किया। वे एक खसरा रोग से पीड़ित युवक का रूप धारण कर, पृथ्वी पर अवतरित हुए। वह घाव–घोष एवं दुर्गंध से घृणित बनकर पृथ्वी पर इधर–उधर चल–फिर रहे थे। भगवान भूखा–प्यासा बनकर असुरों से

भोजन की मांग करते थे तो असुर उन्हें अपने घरों से दूर चले जाने को कहते। तब उसी असुरों की एकासी बस्ती के किनारे छोटी सी झोपड़ी में रहनेवाले लुटकुम बूढ़ा–बुढ़िया के पास पहुँचते हैं। भूखा एवं प्यासा खसरा रोगी की दयनीय दशा पर तरस खाकर उन्हें वे दोनों सेवक के रूप में अपने यहाँ रख लेते हैं। वहाँ असुर बच्चों के साथ मनुष्य रूपधारी भगवान गोली खेलते हैं एवं बूढ़ा–बुढ़िया के काम में मदद भी पहुँचाते हैं।

कुछ दिनों के बाद भगवान लीला दिखाना शुरू करते हैं। असुरों का लोहा गलाने वाला भट्ठा बुझ जाता है। परेशान होकर असुर नदी पार सोखाओं के पास पहुँचते हैं कि उनका भट्ठा बंद हो गया, जिससे वे लोहा गला नहीं पा रहे हैं। उन्हें सोखा ने बताया कि वहाँ पूजा एवं बलि चढ़ानी होगी। सोखा के कहे अनुसार वे काम करते हैं, कुछ दिनों तक सामान्य रूप से भट्ठा में लोहा गलाते हैं, दुबारा उनका भट्ठा काम करना बन्द कर देता है। वे पुनः सोखा के पास जाते हैं तो उन्हें बताया गया कि मनुष्य की बलि देने पर ही भट्ठा जलेगा। तब वे सभी मनुष्य की खोज करते हैं। कोई मनुष्य नहीं मिलता है। असुर भी अपने बच्चों को बलि चढ़ाना नहीं चाहते। अंत में वे उसी लुटकुम बूढ़ा–बुढ़िया के पास पहुँचकर खसरा रोग से पीड़ित युवक को माँगते हैं। वे दोनों उसे देना नहीं चाहते हैं, क्योंकि खसरा युवक उन दोनों की मदद करता है। तब असुर जबरदस्ती हाथ–पैर पकड़कर उन्हें खींचते–घसीटते हुए लोहा गलानेवाला भट्ठा के पास ले जाते हैं। भगवान बातों में उन्हें उलझाकर स्वयं ही भट्ठा में प्रवेश कर जाते हैं।

कुछ देर के बाद जगमग करते हुए बहुत सा सोना, हीरा लेकर बाहर आते हैं। यह देख लालच में पड़कर असुर सोना, रूपा उनसे छीनने लगे तो भगवान ने उन असुरों को कहा–मुझे मत छीनो, मैं तो अकेला था, इसलिए इतना सा ही ला पाया, तुमलोग भी सब कोई जाओ, तुमलोग बहुत भाई–बन्धु हो, इसलिए तुमलोग ज्यादा–ज्यादा ला सकते हो, इस तरह बहकाकर उसने सभी असुरों को भट्ठा में घुसने के लिए प्रेरित किया। भट्ठा के अन्दर घुसते ही सभी जलने लगे। उनके रोने–चिल्लाने की आवाज सुनकर उनकी विधवा पत्नियाँ रोने–विलाप करने लगीं।

लीला दिखाकर भगवान गुलैंची पेड़ के रास्ते ऊपर स्वर्ग की ओर जाने लगे तो असुरों की विधवा स्त्रियाँ भगवान के पैरों पर लटकने लगीं

कि हे भगवान आपने हमारे पतियों को क्यों मार दिया, उन्होंने क्या अपराध किया था, अब हम विधवाएँ कहाँ जाएँगी, क्या खाएँगी, हमारा लालन–पालन कौन करेगा। इस तरह बोल–बोलकर रोने–विलाप करने लगीं। तब भगवान ने उन विधवाओं को समझाया कि तुम्हें अब चिन्ता करने की जरूरत नहीं पड़ेगी। तुम्हारे जीविकोपार्जन की व्यवस्था मैं कर दिया हूँ, अब तुम्हें कोई दुःख तकलीफ नहीं होगा, बल्कि तुमलोग सातो बहनें दूसरों के दुःख दूर करोगी, तुम लोगों की लोग पूजा करेंगे, उनके द्वारा चढ़ाया गया दान–दक्षिणा द्वारा तुम सभी का जीविकोपार्जन होगा। उसके बाद भगवान ने उन्हें अपने पैरों से छुड़ाकर नदी–नाला, गढ़ा–ढोढ़ा, पहाड़–पर्वत, जंगल–झाड़ में फेंकने लगे, वे जहाँ पर गिरी, वहीं पर देवी–स्वरूप स्थापित हो गईं, उसके बाद देवता अन्तर्ध्यान हो गए, फिर देवता मनुष्यों को दिखाई नहीं देने लगे, उसके बाद असुर मनुष्यों से दूर रहने लगे, यहीं पर इसी असुर ग्राम में देवता, दानव (असुर) एवं मनुष्य रूपों में लुटकुम बूढ़ा–बुड़िया के बीच जिस भाषा में वार्तालाप हुई थी, वही देववाणी मुण्डारी भाषा थी। आज भी मुण्डा जाति के लोग पूजा–पाठ, दान–बलिदान करते हैं तो अपने इष्ट देवों के समक्ष मुण्डारी–भाषा से विनती करते हैं।

भगवान जब पृथ्वी पर खसरा युवक का रूप धारण कर मनुष्यों को प्रत्यक्ष दर्शन दिए थे, उस समय मनुष्य रूप प्राणियों की तीन श्रेणियाँ थीं, एक देवता रूप, जो अब अदृश्य हो गए, दूसरा दानव एवं तीसरा मानव। इन तीनों ही श्रेणियों की भाषा मुण्डारी थी एवं लिखने या व्यक्त करने का माध्यम मुण्डारी–लिपि थी, जिसका संशोधित एवं परिवर्तित रूप देवनागरी लिपि है। अतः मुण्डारी लेखन के लिए मुण्डारी या देवनागरी दोनों लिपियों का व्यवहार किया जा सकता है।

मुण्डारी एवं देवनागरी में फर्क इतना है कि मुण्डारी–लिपि बिना छत वाली है, जबकि देवनागरी–लिपि में छत डालकर सुधार लायी गई है। मुण्डारी की तरह बंगाली, उड़िया, गुजराती, कन्नड़, तेलुगू आदि लिपियों के ऊपर भी छत नहीं डाली जाती है। हमारी मातृभाषा मुण्डारी है, भले हमें जन्म देनेवाली माता को मुण्डारी नहीं आती हो, लेकिन मुण्डाओं के पूर्वजों को मुण्डारी के सिवा दूसरी भाषा नहीं आती थी।

छोटानागपुर मुण्डा बहुल प्रदेश है, लेकिन आर्यों के बीच अनार्यों अर्थात

आदिवासियों के बीच प्रवेश के बाद अनेक प्रकार की मिश्रित भाषाओं की उत्पति हुई, कालान्तर में नागपुरी, भोजपुरी, कुरमाली, खोरठा, बंगाली आदि भाषाओं का प्रवेश मुण्डारी भाषा में हो गया है। मुण्डारी एवं उसके समकक्ष की भाषाओं को छोड़कर जितनी भाषाएँ हैं, वे सभी अनार्य–भाषा–समूह की भाषाएँ हैं जैसे बिहार के भोजपुर जिला की 'भोजपुरी', नागवंश प्रभावित क्षेत्र की भाषा 'नागपुरी', कुड़मियों एवं कुरमियों की भाषा 'कुड़माली' है, सदान जातियों की भाषा 'सदानी' है। इतना ही नहीं बंगाली, कुरमाली, खोरठा, नागपुरिया एवं तमाड़िया, मुण्डारी आदि पाँच भाषाओं के सम्मिश्रण से पंचपरगनिया नामक एक नई भाषा की भी उत्पत्ति हुई है। इसका विस्तार केवल बुण्डू, तमाड़, सोनाहातु, राहे एवं सिल्ली परगना क्षेत्र में है। यह भाषा जाति, धर्म के दायरे में नहीं आती, बल्कि पंचपरगना क्षेत्र के अगल–बगल के क्षेत्रों से आकर बुण्डू तमाड़ क्षेत्र में बसनेवालों की मिली–जुली भाषा है। इसलिए इस भाषा का नाम 'पंचपरगनिया' है। इस क्षेत्र में रहनेवालों की धर्म–संस्कृति, रीति–रिवाज भी किसी खास जाति की पहचान नहीं बताते हैं और न ही भाषा की उत्पत्ति एवं विकास बताते हैं, किन्तु उस क्षेत्र के मुण्डाओं की धर्म–संस्कृति, रीति–रिवाजों को अन्होंने अपना लिया है।

ऑस्ट्रोएशियाटिक भाषा छोड़कर शेष अनार्य भाषाएँ हैं अर्थात् बाहरी भाषाएँ। अनार्य का अर्थ 'आया हुआ' या 'आगत' है एवं आर्य का अर्थ है, अनार्यों से भिन्न यहाँ के मूल प्राचीन एवं आदि निवासी। इसी आर्य शब्द से आदिवासी शब्द की उत्पत्ति हुई है। आदिवासी का दूसरा अर्थ है, जो आगत नहीं है, जो यहाँ के आदिवासी या आदि निवासी हैं।

विदेशी–भाषा–भाषियों का आगमन भारत में विभिन्न कालों एवं दिशाओं से हुआ है। जितनी समूह उतनी भाषाओं की उत्पत्ति एवं निर्माण हुआ, अतः राज्यों, जिलों, जातियों, धर्मों के नाम पर भाषा का नामकरण किया गया है जैसे पंचपरगना क्षेत्र में 'पंचपरगनिया', नागवंशी क्षेत्र में 'नागपुरी', बंगाल में 'बंगाली', बिहारियों की 'बिहारी', राजस्थानियों की 'राजस्थानी', पंजाबियों की 'पंजाबी', कुरमी बहुल क्षेत्र में 'कुरमाली', भोजपुर जिला की 'भोजपुरी', अंगदेश की 'अंगिका', जो इस समय बिहार में है, मैथिल जातियों की 'मैथिली' आदि भिन्न–भिन्न दृष्टिकोणों से अपनी सहूलियत के अनुसार भाषा का नामकरण कर दिया जाता है। इनमें से भोजपुरी, मैथिली, अंगिका

आदि बिहार की क्षेत्रीय–भाषाओं का व्यवहार करने या बोलने वालों का आंकड़ा एकत्र कर झारखण्ड सरकार से द्वितीय राज्यभाषा घोषित करने की मांग की जा रही है। इस तरह मांग करने वाले पंक्ति में अभी भी खड़े हैं।

ऊपर वर्णित भाषाओं का इतिहास नहीं है। इसी प्रकार समय व्यतीत होता जाएगा, नई–नई अनार्य भाषाओं की उत्पत्ति होती रहेगी। यह सिलसिला चलता रहेगा। झारखण्ड सरकार की उदार–नीति के कारण बाहरी राज्यों एवं देशों की भाषा को भी द्वितीय–राज्यभाषा घोषित करने में संकोच नहीं होगा। जितनी भी अनार्य भाषाएँ हैं, वे पाँच कोस पर पानी, दस कोस पर वाणी की तरह परिवर्तित हो जाती हैं। क्षेत्रीय बोली का कोई स्थित अस्तित्व नहीं रह पाता, वह डेग–डेग पर बदलनेवाली है। केवल मुण्डारी भाषा में मौलिकता एवं स्थिरता है। मुण्डाओं की भाषा आज भी मुण्डारी है, जो कई युगों के बाद भी ज्यों की त्यों है। इसीलिए भारत की आरम्भिक भाषा मुण्डारी है, इसका कारण भाषा का मजबूत आधार एवं इसकी व्याकरणिक विशेषताएँ हैं, जो भाषा को नियंत्रित एवं स्थिर करती हैं। मुण्डारी–भाषा में थोड़ी सी हेर–फेर से भाषा के अर्थ बदल जाते हैं। भले ही इस भाषा को न समझ पाने के कारण विदेशियों ने नकार दिया है एवं अपनी अनार्य भाषाओं को उन पर थोंप दिया है।

इस समय अनेक जनजातीय–भाषा विद्वानों ने लेखन के लिए वैकल्पिक –लिपियों को आधार मानकर लेखक कार्य में संलग्न हो गए हैं। लिपि का तात्पर्य है लिखने एवं बोलने का तरीका, जिस लेखन एवं पठन तरीका को सर्वसम्मति से स्वीकार कर अमल में लाया जाए। संथाली, हो, खड़िया, कुडुखों ने भी लिपि की दुविधा को समाप्त कर लिया है, लेकिन विदेशी मूल के लोगों ने मुण्डारी–लिपि को ही संशोधित एवं परिवर्तित कर कायथी या कैथी–लिपि के रुप में नामकरण दिया, पुनः इसी आधार पर कायस्थ जाति एवं मूल के लोगों ने देवनागरी–लिपि का अविष्कार किया है, देवनागरी हडप्पा–कालीन मुण्डारी लिपि ही है, अतः मुण्डारी लेखन के लिए देवनागरी–लिपि का ही उपयोग करना चाहिए, क्योंकि यह देवता, दानव एवं मानवों की भाषा से संबंधित है, जिसका संबंध 'सोसो–बोंगा' पूजा मंत्रों से भी है, इसलिए मुण्डारी–लिपि की खोज करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

मैं नहीं कहती, मैं सही हूँ, मेरे विचारों पर मुण्डा समाज विचार करे तो मैं उनके प्रति आभारी बनी रहूँगी। यदि इसमें सुधार की आवश्यकता है तो मैं सहर्ष इसके लिए तैयार हूँ। मेरे द्वारा रचित **'मुण्डारी भाषा एवं लिपि'** पुस्तिका आप सबके समक्ष प्रस्तुत है।

इतना ही कहकर मैं अपनी बातें समाप्त करती हूँ।

जोहार!

मुण्डा लिपि संकलक

प्रो० लगनी हेरेंज (टुटी)
सेवानिवृत्त विभागाध्यक्षा
हिन्दी विभाग,
डोरण्डा महाविद्यालय
राँची, झारखण्ड

स्व. सुकरा मुण्डा (मुण्डू), सुन्दगढ़, उड़ीसा की स्मृति में मैं ''मुण्डारी–भाषा एवं लिपि'' पुस्तिका को सादर समर्पित करती हूँ।

दो शब्द

भाषा भावाभिव्यक्ति का माध्यम है। किन्तु भाषा वही है जिसकी लिपि हैं और लिपिरहित भाषा बोली की श्रेणी में आती है। इस सिद्धान्त के आधार पर लेखिका प्रो0 लगनी हेरेंज का यह चिन्तन करना स्वाभाविक है कि आखिर मुण्डाओं की मुण्डारी–भाषा क्या है– बोली है या भाषा? चूँकि इस भाषा की अपनी लिपि अभी तक उजागर नहीं हुई है। फलतः हिन्दी की देवनागरी–लिपि से ही काम चल रहा है। ऐसी स्थिति में इन्होंने अपने ढंग से मुण्डारी–भाषा की लिपि को उजागर करते हुए स्थापित करने का प्रयास किया है। इनके मतानुसार मुण्डारी–भाषा देववाणी है ओर देववाणी होने के नाते मुण्डारी–लिपि को ही देवनागरी–लिपि कही गयी है। किन्तु यह एक शोध का विषय है। इस दिशा में सोचने के लिए वह मुण्डा–समाज के भाषाविदों को आग्रह करती है। इस सराहनीय सोच के लिए उन्हें मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ।

सोमा सिंह मुण्डा
सेवानिवृत सहायक निदशक
(भाषा–तत्व)
डॉ0 रामदयाल मुण्डा जनाजतीय
कल्याण शोध संस्थान, राँची।

1. मुण्डारी–भाषा एवं लिपि

किसी भी भाषा को, किसी खास तरीकों द्वारा लिख एवं बोलकर अभिव्यक्त करने का माध्यम ही 'लिपि' है। भारत देश की विभिन्न भाषाओं की तरह मुण्डारी–भाषा की भी अपनी लिपि है। भाषा की उत्पत्ति–स्थान मनुष्यों के कंठ एवं मुख होते हैं, किन्तु कंठ–मार्ग से निकलनेवाले स्वर अ, आ, इ, ई, उ, ऊ आदि स्वरों से ही भाषा की उत्पत्ति नहीं होती, बल्कि कंठ से निकलनेवाले स्वरों एवं मुख से उच्चरित व्यंजन–वर्णों के मेल से उत्पन्न सार्थक–शब्दों द्वारा भाषा की उत्पत्ति होती है। इस तरह भाषा वह है, जिसका कोई अर्थ होता है, निरर्थक शब्दों का कोई महत्व नहीं होता, बल्कि उन शब्द–रूपों को भाषा की श्रेणी में रखा जाता है, जिनके माध्यम से व्यक्ति अपने भावों एवं विचारों को अभिव्यक्त करता है।

पशु–पक्षियों की भी अपनी भाषा होती है, लेकिन उनकी भाषा केवल पशु–पक्षियाँ ही समझ सकते हैं। भाषा–विज्ञान एवं भाषा–साहित्य की दृष्टि से केवल मनुष्यों की भाषा का ही अध्ययन किया जाता है। भाषा का अर्थ मनुष्यों की भाषा से है, जिसके द्वारा वे अपने भावों एवं विचारों का आदान–प्रदान कर सकते हैं।

(क) ककला (स्वर ध्वनि)

ऑस्ट्रोएशियाटिक–भाषा समूह के आग्नेय–परिवार की मुण्डारी –भाषा में 'ककला' का अर्थ होता है आवाज, स्वर, ध्वनि। कंठ में ध्वनि दो प्रकार के होते हैं, एक 'ह्रस्व', दूसरा 'दीर्घ'। इन ह्रस्व एवं दीर्घ ध्वनियों को इस प्रकार अंकित किया जाता है:–

स्वर – अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं अः

जिन स्वरों के उच्चारण में कम बल लगता है वे 'ह्रस्व–स्वर' होते हैं तथा जिन स्वरों के उच्चारण में अधिक बल लगता है, वे 'दीर्घ–स्वर' होते हैं। देवनागरा–लिपि में भी मुण्डारी–लिपि की तरह ह्रस्व एवं दीर्घ–स्वर होते हैं, जो इस प्रकार अंकित किये जाते हैं:–

अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं अः

इन्हीं स्वरों को मुण्डारी–लिपि में स्वर–चिन्हों एवं मात्राओं को इस प्रकार व्यक्त किया जाता है:–

ा, ा, ि, ी, ु, ू, े, ै, ो, ौ, ं, :

अबतक मुण्डारी लेखन के लिए देवनागरी–लिपि का प्रयोग किया जाता रहा है, किन्तु मुण्डा लोक–कथानुसार 'सोसो–बोंगा' (भेलवा–पूजा) मंत्रों से स्पष्ट होता है कि मुण्डारी सृष्टि के आरम्भ की भाषा थी, जब देवता एवं दानवों ने युद्ध किया था, उस समय वे मुण्डारी–भाषा में वार्तालाप करते थे, इसलिए इस बात में संदेह नहीं कि मुण्डाओं की देववाणी ही देवनागरी–वाणी है, अर्थात् देवताओं एवं नागरिकों के बीच की भाषा। देवता का अर्थ देवों से है एवं नागरिक का अर्थ सभ्य हो चुके शिक्षित नागरिकों से है। प्रारम्भ में मुण्डारी–भाषा प्राक् सभ्य आर्यों की भाषा थी। कालान्तर में इन्हीं आर्यों के बीच अनार्यों का प्रवेश हुआ, तब आदिवासी बहुल देश में मुण्डारी–भाषा प्रचलित थी। वे मुण्डारी–भाषा के अलावा दूसरी भाषा नहीं जानते थे। उस समय मुण्डारी–भाषा आर्यावर्त याने भारत की मौलिक भाषा थी एवं अन–आर्यन भाषाएँ पृथक् भाषाएँ थीं, उनमें किसी प्रकार का आपसी तालमेल नहीं था। दोनों भाषाओं के मध्य जमीन–आसमान का फर्क था। मुण्डाओं के बीच अनार्यों के प्रवेश के बाद मुण्डारी–भाषा के भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति में भिन्नता होने के कारण आर्यों को घोर अपमान, उपेक्षा का सामना करना पड़ता था, यह बातें अब काल के गर्त में समाहित हो चुकी हैं।

मुण्डाओं की प्राचीन सभ्यता–संस्कृति, भाषा–साहित्य, रहन–सहन, खान–पान, पहनावा–ओढ़ावा एवं रीति–रिवाजों के बीच नवीन विदेशी सभ्यता का आविर्भाव हुआ। नवीन सभ्यता के विकसित होते ही प्राचीनता की जगह नवीनता ने ले ली। नई–नई तकनीकियाँ विकसित होने लगीं। विकास को नई दिशा देने के लिए भाषा का विकास एवं संवर्द्धन प्रथम आवश्यकता थी। विदेशी लोगों के लिए अनार्य–भाषा का विकास किये बिना किसी भी क्षेत्र में कार्य संपादन करना अत्यन्त कठिन था। इसके लिए एक सशक्त लिपि की आवश्यकता थी। भाषा का व्याकरण बनानेवाले वैयाकरणिकों के समक्ष मुण्डारी–लिपि ही एकमात्र विकल्प थी, जिसके

अन्तर्गत कंठ से निकलनेवाले स्वर एवं तालु, मूर्धा, दंत्य, ओष्ठ, अनुनासिक व्यंजन– वर्णों को बोलकर तथा लिखकर व्यक्त करने की व्यवस्था थी, अतः बड़े ही सहज भाव से संस्कृत एवं हिन्दी–भाषा के बीच मुण्डारी–व्याकरण स्वीकार कर ली गई। इस प्रकार मुण्डारी–लिपि एवं व्याकरण को आधार मानकर हिन्दी, संस्कृत आदि अन्य भाषाओं का विकास हुआ। यह सत्य निर्विवाद है, मुण्डाओं की देववाणी ही 'देवनागरी–वाणी' है तथा सभी भाषाओं की 'जननी' है। देवनागरी–लिपि ही मुण्डारी–लिपि का विकसित एवं संशोधित रूप है। मुण्डारी अति प्राचीन एवं अपरिवर्तनीय भाषा है, जो अबतक ज्यों की त्यों बनी हुई है।

(ख) कजि च जगर (व्यंजन वर्ण)

व्यंजन का अर्थ है 'व्यंजना करना', 'व्यक्त करना', 'कहना', 'बोलना'। अभिव्यक्ति के प्रकार को ही मुण्डारी से 'जगर' या 'कजि किसिम या बरन' कहते हैं अर्थात् बोलने या कहने का प्रकार के द्वारा अपनी बातों को दूसरों को अभिव्यक्त कर सकें।

2. मुण्डारी–लिपि एवं भाषा का विश्लेषण

(1) तुलनात्मक दृष्टि से मुण्डारी एवं देवनागरी–लिपिः–

क	क	ख	ख	ग	ग	घ	घ	ङ	ङ
च	च	छ	छ	ज	ज	झ	झ	ञ	ञ
ट्	ट	ठ	ठ	ड	ड	ढ	ढ	ण	ण
त	त	थ	थ	द	द	ध	ध	न	न
प	प	फ	फ	ब	ब	भ	भ	म	म
य	य	^	र	ल	ल	व	व	श	श
ष	ष	स	स	ह	ह	ड़	ड़	ढ़	ढ़

(2.) आधा मुण्डारी बोल या कजि लिखने की सुविधा निम्न प्रकार है:–

क्	क	ख्	ख	ग्	ग	घ्	घ		ङ	
च्	च		छ	ज्	ज	झ्	झ	ञ्	ञ	
	ट		ठ		ड		ढ	ण्	ण	
त्	त	थ्	थ		द	ध्	ध	न्	न	
प्	प	फ्	फ	ब्	ब	भ्	भ	म्	म	
य्	य		र	ल्	ल	व्	व			
श्	श	स्	स		ह	क्ष्	क्ष	त्र्	त्र	
			ज्ञ		ड़		ढ़			

नोट– कुछ अक्षरों का आधा बोल नहीं होता है।

(3.) व्यंजन वर्णों के साथ नीचे बायीं ओर झुक कर लगनेवाली आधा 'ˏ' (‸) एवं ह्रस्व 'अ' का संयुक्त प्रयोग देवनागरी एवं संस्कृत में भी किया जाता है–

क्र	ख्र	ग्र	घ्र	
च्र	छ्र	ज्र	झ्र	
ट्र	ठ्र	ड्र	ढ्र	
त्र	थ्र	द्र	ध्र	न्र
प्र	फ्र	ब्र	भ्र	म्र
य्र	ˏ	ल्र	व्र	श्र
ष्र	स्र	ह्र	ड़	ढ़

(4.) व्यंजन वर्णों के साथ 'ऋ', '꜀' का संयुक्त प्रयोग देवनागरी एवं संस्कृत में भी किया जाता है।

	कृ	खृ	गृ	घृ	
	चृ	छृ	जृ	झृ	
	टृ	ठृ	ड़ृ	ढृ	
	तृ	थृ	दृ	धृ	नृ
	पृ	फृ	बृ	भृ	मृ
	यृ	ऋ	लृ	वृ	शृ
	षृ	सृ	हृ		

5. दो व्यंजन वर्णों के ऊपर लगनेवाला रेफ (ॅ) का प्रयोग देवनागरी एवं संस्कृत में भी किया जाता है:– इस प्रकार मुण्डारी–लिपि का प्रयोग देवनागरी एवं संस्कृत भाषा में अनेक रूपों में किया गया है जैसे'–(^) को दाहिनी की ओर झुका कर ऊपर पड़ी लकीर डालने पर (ट) की रचना हुई है, वर्णों के ऊपर (^) को दाहिनी ओर देने पर रेफ (<) की रचना हुई है, (वर्णों के ऊपर ^ (<) को दाहिनी ओर उलट देने पर रेफ 'ॅ' की रचना हुई है) वर्णों के नीचे (^) को दाहिनी ओर झुका देने पर 'रि' ध्वनि निकलती है। (^) का आधा भाग वर्णों के नीचे बायीं ओर झुका कर लिखने पर आधा उच्चारण किया जाता है, जो बायीं ओर अक्षरों के नीचे '/' तिरछी हो जाती है।

र्क	र्ख	र्ग	र्घ	
र्च	र्छ	र्ज	र्झ	
र्त	र्थ	र्द	र्ध	र्न
र्प	र्फ	र्ब	र्भ	र्म
र्य	र्र	र्ल	र्व	र्श
र्ष	र्स	र्ह		

(6.) **अनुस्वार (ं) का प्रयोग** :– व्यंजन वर्णों के साथ अंग ध्वनि को मेल कर उच्चारण करने पर कंठ मार्ग से निकलनेवाली वायु कुछ पल के लिए गले के पास रुक कर नाक मार्ग से निकलती है तो अनुनासिक वर्ण बनती है, जो अक्षरों के ऊपर बिन्दु (ं) के रूप में लग जाती है।

क	कं	ख	खं	ग	गं	घ	घं	ङ	ङं
च	चं	छ	छं	ज	जं	झ	झं	ञ	ञं
ट	टं	ठ	ठं	ड	डं	ढ	ढं	ण	णं
त	तं	थ	थं	द	दं	ध	धं	न	नं
प	पं	फ	फं	ब	बं	भ	भं	म	मं
य	यं	र	रं	ल	लं	व	वं	श	शं
ष	षं	स	सं	ह	हं	क्ष	क्षं	त्र	त्रं
		ज्ञ	ज्ञं	ड़	ड़ं	ढ	ढं		

(7.) **अल्पप्राण एवं महाप्राण मात्राएँ:**– मात्राएँ दो प्रकार की होती हैं:– प्रथम अल्पप्राण मात्राएँ या ह्रस्व मात्राएँ दूसरी महाप्राण मात्राएँ या दीर्घ मात्राएँ। जहाँ भाषा की अभिव्यक्ति में कम बल लगता है, वहाँ अल्प प्राण (।) मात्राएँ लगती हैं एवं जहाँ अधिक बल लगता है, वहाँ महाप्राण (ऽ) मात्राएँ लगती हैं जैसे :–

। । ऽ ककला	ऽ । रानु	। । ऽ कमला	। । सिम	। । ऽ पयला
। ऽ । सदाव	। । ऽ बरिया	ऽ ऽ राजा	ऽ । राई	ऽ । । । सोनपुर
। ऽ ऽ उडीसा	ऽ ऽ राँची	ऽ । ऽ ऽ चाइबासा	। । ऽ पटना	ऽ । हातु
। । । सुनुम	। । ऽ मसला	। ऽ सेता	। ऽ कुला	। । तुयु
। ऽ । पराय	। । । तयन	। । । हरिन	। ऽ । सदोम	ऽ ऽ होड़ो

(8.) **ककला (स्वर या ध्वनि) का बारह प्रकार से प्रयोग:**– ककला (ध्वनि) को बारह प्रकार से व्यंजन वर्णों के साथ संयुक्त कर व्यक्त किया जाता है, जो निम्न प्रकार है:–

ॖ	ा	ि	ी	ु	ू	े	ै	ो	ौ	ं	:

नोट – अक्षरों या वर्णों में लगनेवाला 'अः' (:) ध्वनि या स्वर 'अ' स्वर में संयुक्त रूप में समाहित है।

(9.) संयुक्त अक्षर या वर्ण को तोड़ कर निम्न प्रकार से लिखी जाती है:–

क्त	त्म	म्न	द्व	स्व	स्त	प्र	ध्य	प्त	ब्ध	त्स	त्र
कत	तम	मन	दव	सव	सत	पर	धय	पत	बध	तस	तर

(10.) मुण्डारी–लिपि एवं देवनागरी–लिपि में समानता :–

मुण्डारी	देवनागरी	मुण्डारी	देवनागरी	मुण्डारी	देवनागरी	मुण्डारी	देवनागरी
अ	अ	क	क	ट	ट	प	प
आ	आ	ख	ख	ठ	ठ	फ	फ
इ	इ	ग	ग	ड	ड	ब	ब
ई	ई	घ	घ	ढ	ढ	भ	भ
ऊ	ऊ	ङ	ङ	ण	ण	म	म
ऐ	ऐ	च	च	त	त	य	य
ओ	ओ	छ	छ	थ	थ	/	र
औ	औ	ज	ज	द	द	ल	ल
अं	अं	झ	झ	ध	ध	व	व
अः	अः	ञ	ञ	न	न	श	श
स	स	ह	ह				

नोट– जिस शब्द में `, ``, ा, ो है वह शब्द वैसा ही लिखा–पढ़ा जाता है।

(11.) मुण्डारी–लिपि का ^ (< , र) का अनेक रूपों में प्रयोग:–

मुण्डारी लिपि के '^' (र) के अनेक रूप हैं, जैसे:–

(1) ^ – यह मुण्डारी का पूर्ण एवं मूल अक्षर है, जो देवनागरी–लिपि में दाहिनी ओर झुकाकर (<) लिखी जाती है।

(2) ˏ – यह मुण्डारी–लिपि का आधा 'र' है, जो देवनागरी–लिपि में अक्षर के बायीं ओर तिरछी कर लिखी जाती है।

(3) –ᶜ – देवनागरी–लिपि में इसका उच्चारण 'रेफ' के समान है, जो दो वर्णों के बीच का उच्चारण है, किन्तु यह दूसरे वर्ण के ऊपर लगती है।

(4) ꜀ – इस 'ऋ' का उच्चारण रि के समान ही होता है, जो वर्णों के नीचे दाहिनी ओर मोड़कर लगायी जाती है।

इन सभी ' ^ ' (र) समतुल्य वर्णों को लिखने का तरीका एवं स्थान भिन्न–भिन्न है, किन्तु इन सभी ' ^ ' (र) की उत्पत्ति–स्थान समान है।

(12.) मुण्डारी–लिपि का '^' (र) का प्रयोग एवं उच्चारण हिन्दी, उर्दू, संस्कृत एवं अंग्रेजी भाषा में:–

मुण्डारी–लिपि के '^' (र) का हिन्दी, उर्दू, संस्कृत एवं अंग्रेजी के शब्दों के साथ इस प्रकार लिखा जाता है जैसे – 'ˏ ' (आधा 'र'), 'ᶜ ' (रेफ) एवं '꜀ ' (ऋ) तथा 'र' में ह्रस्व ' ͜ ' डालने पर 'रु' एवं दीर्घ ' ͜ ' डालने पर 'रू' हो जाता है जैसे–

' ^ ' – अंग्रेजी शब्दों में प्रयुक्त – ड्रम, ड्रामा, ड्रेस, ड्रॉइंग, ड्रोप, ड्रैगन, डेनड्रफ, ट्रस्ट, ट्रेस, ट्रेन, ट्रम्प, ट्रेजेडी, ट्रक, ट्रैक, ट्रॉफी, ट्रेनिंग, रजिस्ट्री आदि।

'ˏ ' आधा 'र' के शब्द– क्रम, क्रमशः, ग्रहण, ब्रज, भ्रष्ट, ग्रह, त्रेता, संग्रह, समग्र, सामग्री आदि।

–ᶜ –रेफ के शब्द – कर्म, धर्म, गर्त, गर्म, चूर्ण, चर्च, संपर्क, चर्म, दीर्घ, संघर्ष, घर्षण, बर्छा, जुर्माना, ठर्रा, तर्क, थर्राहट, संकीर्ण आदि।

'꜀ ' – ऋ के शब्द – वृष्टि, वृहद, वृक्ष, वृक, कृषक, तृष्णा, तृप्त, दृष्टि, दृश्य, नृप, धृत, घृणा, सृजन, श्रृंगार, सृष्टि, कृति, कृत्रिम, कृष्ण, यकृत आदि।

ऊपर के उदाहरणों से यह ज्ञात हुआ है कि अनेक भाषाओं के बीच मुण्डारी के वर्णों का प्रवेश हो चुका है। मुण्डारी–भाषा एक समृद्ध भाषा है,

विश्व के हजारों भाषा समूहों के बीच इसकी खास पहचान है। इसीलिए भाषा–वैज्ञानिकों ने मुण्डारी–भाषा को ऊँचे दर्जे पर रखा है। इस भाषा में न कोई परिवर्तन और कोई मिश्रण है, जबकि अनेक भाषाएँ अपने अस्तित्व की खोज में वर्षों व्यतीत कर देते हैं, लेकिन ओर–छोर का पता नहीं चलता है, क्योकि भाषा वागेन्द्रियों एवं कर्णेन्द्रियों द्वारा प्रसारित होकर दूर–दूर तक गमन करती है, जो किसी के अधीन नहीं होती, वरन् स्वतंत्र रूप से विचरण करनेवाली एक विधा है।

मुण्डारी–भाषा का प्रवेश संस्कृत, उर्दू, अंग्रेजी, हिन्दी आदि अन्य–अन्य भाषाओं में हो चुका है, जिससे उन भाषाओं में विशिष्टता एवं कर्णप्रियता आ गई है तथा भाषा के सौंदर्य में वृद्धि हुई है, जो विश्लेषण एवं अनुसंधान का विषय है। इस समय ऑस्ट्रोएशियाटिक भाषा–समूह के हो, मुण्डा, संथाली, खड़ियाओं ने भाषा की उत्पत्ति एवं सम्यक् लिपियों को ढूँढ़ने का प्रयास किया है। उन्होंने सिन्धु एवं सिन्धु की सहायक नदियों के किनारों से प्राप्त शिलालेखों को भी पढ़ने में असमर्थ होने के कारण वैकल्पिक लिपि द्वारा अपनी भाषा के विकास एवं संवर्द्धन हेतु साहित्यिक रचनाओं को नई दिशा देने का प्रयत्न किया है। यह प्रयत्न समुद्र से मोती चुनकर लाने जैसी चुनौती है, किन्तु प्राचीन लिपि का ही संशोधित एवं संवर्द्धित रूपों में देवनागरी लिपि का प्रयोग लेखन, पठन–पाठन में कर रहे हैं। यह भाषा–वैयाकरणिकों एवं भाषा–वैज्ञानिकों की विद्वतापूर्ण खोज है। देवनागरी–लिपि देवों तथा विशिष्ट, सभ्य–शिक्षित नागरिकों की लिपि है, जिसमें मुख से उच्चरित सभी प्रकार के स्वर एवं व्यंजन वर्णों की उत्पत्ति एवं विकास की व्याख्या होती है, जिसके द्वारा गूढ़ से गूढ़ भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति हो सकती है।

3. मुण्डारी–लिपि की विशेषता

कंठ एवं वागेन्द्रियों से निकलनेवाली सभी स्वर एवं शब्द मुण्डारी –लिपि में विद्यमान है। मुण्डारी–भाषा कोमल–भाषा है, इसलिए इसमें कोमल या ह्रस्व स्वर–व्यंजन वर्णों एवं मात्राओं की प्रधानता है। किसी बात पर दबाव देने, जोर देने या गुस्से की स्थिति में कठोर स्वर–वर्णों एवं मात्राओं का व्यवहार किया जाता है। मुण्डारी के वर्णों के ऊपर 'पड़ी लकीर' का अभाव होता है, उसी प्रकार बंगाली, उड़िया, गुजराती, राजस्थानी, कन्नड़,

तेलगू में भी पड़ी लकीर नहीं है।

- ☞ 'ङ' का व्यवहार 'अंग+अ' (̇) ध्वनि के लिए किया जाता है।
- ☞ 'ञ' का व्यवहार 'इं+अ' ध्वनि के लिए किया जाता है।
- ☞ 'ण' का व्यवहार 'अ+ड़+अंग' संयुक्त–ध्वनि के लिए किया जाता है।
- ☞ 'व' का व्यवहार 'ब' के रूप में या शब्द के बीच या अंत में होता है।
- ☞ 'क्ष' का व्यवहार 'छ' के रूप में होता है।
- ☞ 'श' एवं 'ष' का व्यवहार दंत 'स' के रूप में होता है।
- ☞ शब्दों में 'तालव्य श' एवं 'मूर्धन्य ष' का व्यवहार नगण्य है।
- ☞ 'त्र' एवं 'ज्ञ' का विच्छेद कर 'त+र' एवं 'ग्+य' के रूप में होता है।
- ☞ 'ऋ' का व्यवहार 'रि' के रूप में किया जाता है।

4. आर्य–भाषा का अनार्य–भाषाओं में प्रविष्टि :–

आर्य भाषा के अनेकानेक शब्द अनार्य एवं अन्य भाषाओं में प्रविष्ट होकर इतने घुलमिल गये हैं कि उनकी पहचान मुश्किल हो गई है, यथा –

आर्य	अनार्य	आर्य	अनार्य
चतोम	छत्र	पोरोब	पर्व
मनोवा	मानव	गोरोब	गर्भ
सोंकोटो	संकट	जोमदूत	यमदूत
पिरिति	प्रीति	सदु	साधू
पताल	पाताल	गोट	गोष्ठ
दारू	दारू	पुरना	पुराना
मदुकम	मधुकम	राइज	राज्य
कीलि	कुल	कुइला	कोयला
जतरा	यात्रा	जोतोन	यत्न
बोचोन	वचन	सबइसि	शाबाश
रोगाइ	रोगी	गुन	गुण
जीवोन	जीवन	पारिक	परख

पोटाला	पोटली	रिंड़ि	ऋण
कंथा	कंथा	थापना	स्थापना
दांडे	दान	हटि	हठ
रगोसा	राक्षस	संका	शंख
तपन	तर्पण	पंति	पंक्ति
वसुत	वस्तु	जोनोम	जन्म
मंतर	मंत्र	सुकु	सुख
दुकु	दुःख	बका	बक
तलि	ताड़ी	तरावड़ि	तलवार
उचुन	उतुंग	उतुंड़	उजाड़

उसी प्रकार दासि, पंचाइति, रासि, सोंगोति, कोनेया, जुगु, मुनु, सुकुरि, थैलअ, सोमान, ककला, बमड़े, ओनमान, जनम, भगत, कुंजी, मसना, हाता, बकलअ, कुटुम, दोरपोन, सिमाना, परचार आदि कितनी ही मुण्डारी शब्दों को अनार्य भाषा–भाषी लोगों ने मुक्तकंठ से, निःसंकोच भाव से, बड़ी सहजता से स्वीकार कर अपनी भाषा का अभिन्न हिस्सा बना लिया, इसलिए यह कहने में कोई संकोच नहीं कि मुण्डारी भाषा संसार के लोगों की जुबान पर राज करती है। इसीलिए मुण्डारी की श्रेष्ठता एवं मौलिकता को बेझिझक लोगों ने स्वीकार किया है। भले ही लोगों को इसकी वास्तविकता की जानकारी न हो, अनजाने में या छुपकर लोगों के जुबान पर मुण्डारी पहुँच चुकी है। उदाहरण के लिए 'ककला' शब्द को लिया जाय। ककला का अर्थ स्वर, ध्वनि, आवाज होता है। अनार्य भाषा वैज्ञानिकों ने भी ककला को ही 'काकल्य' कहा है। मुण्डारी–भाषा में ककला का अर्थ है गला या कंठ से निकलनेवाली स्वतंत्र एवं नैसर्गिक ध्वनि या आवाज है, जिसे लेखन हेतु अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः के रूप में पहचान दी गई है। 'काकल्य' की उत्पत्ति मुण्डारी शब्द 'ककला' से हुई है तथा व्यंजन का अर्थ बोलना, कहना, बात करना, शब्द करना होता है, इसे ही मुण्डारी में 'बंकड़', 'कजि' या 'जगर' कहते हैं। इस तरह भाषा सर्वेक्षण से ज्ञात हो चुका है कि देवनागरी–लिपि के सर्जक एवं वैयाकरणिक पाणिनि आदि भाषा –वैज्ञानिकों ने मुण्डारी के ककला एवं कजि (स्वर एवं व्यंजन) के मेल से व्युत्पन्न बोल को वर्गीकृत किया है। कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग एवं स्पर्श, अन्तस्थ, उष्म वर्णों को कण्ठ, तालु, मूर्द्धा, दन्त, ओष्ठ से सम्पर्क, स्पर्श या छुवन से निकली आवाज

एवं बोल को बड़ी ही विद्वतापूर्ण तरीके से वर्गीकरण कर भाषा–वैज्ञानिक ने लेखन, पठन–पाठन की कठिनाइयों को दूर कर दिया है। इतना ही नहीं आवाज एवं बोल (ककला अर कजि) को मुख एवं कंठ में स्थित उच्चारण स्थानों के अनुसार 'अल्पप्राण' एवं 'महाप्राण' दो खण्डों में विभक्त कर वाणी (भाषा) की विसंगतियों एवं विभेदों का तुलनात्मक ढंग से अध्ययन का मार्ग प्रशस्त किया है, जो मुण्डारी–भाषा की देन है। मुण्डारी–भाषा का प्रयोग करनेवालों ने वागेन्द्रियों से निकलनेवाली ञ, ङ, ण आदि अनुनासिक वर्णों को भी अपनी भाषा में शामिल किया है, जबकि ये वर्ण दूसरी अनार्य भाषाओं में प्रयोग में नहीं आते हैं। तात्पर्य है वागेन्द्रियों की सहायता से जिन शब्दों का उच्चारण सम्भव है, उन सभी का प्रयोग मुण्डारी–भाषा में होता है, जो मुण्डारी–भाषा के लिए प्रकृति की नैसर्गिक देन है।

भाषा–विज्ञान का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है, मुण्डारी–लिपि ही परिष्कृत एवं संशोधित रूपों में देवनागरी लिपि है, भले ही इस कथन का लोग विरोध कर सकते हैं, क्योंकि आर्य–भाषाएँ एवं अनार्य–भाषा दो भिन्न–भिन्न भाषा–समूह की भाषाएँ हैं। अनार्य–भाषा से तात्पर्य है बाहर से आयातित भाषाएँ एवं आर्य से तात्पर्य है, यहाँ के मूल निवासियों की भाषाएँ। इन दोनों समूह के बीच एकता की बातें करना समझ से परे की बातें हैं, लेकिन मनुष्य–मात्र की वागेन्द्रियों की संरचना समान रूप से हुई है, इसलिए उन सभी के कंठ एवं मुख से एक ही प्रकार के स्वर एवं बोल की उत्पत्ति होती है, चाहे वह किसी भी देश या विदेश का वासी हो, देवनागरी–लिपि अपने भावों एवं विचारों को व्यक्त करने के लिए सबसे उपयुक्त लिपि है, जबकि रोमन–लिपि में भी कई खामियाँ हैं। उसमें लिखने एवं बोलने में अन्तर है। अतः मुण्डारी–भाषा विज्ञान की ऐतिहासिकता को मापदण्ड पर रखकर देखा जाता है तो गर्व का अनुभव होता है कि देवनागरी देवों, दानवों एवं सभ्य नागरिकों की भाषा बन चुकी है। अब देव हमारी नजरों से ओझल हो चुके हैं। सत्य–युग में देवों, मानवों एवं दानवों की सीधी बातचीत होती थी, 'देवों की वाणी' ही देवनागरी है। किन्तु कलियुग में देवतागण मनुष्यों एवं दानवों से रूष्ट होकर अदृश्य हो गए हैं। ऐसी चौंकानेवाली घटनाओं की चर्चा लोककथाओं में मिलती है। देवता, मानव एवं दानवों का अस्तित्व अभी भी है, भले ही देवता हमें दिखलाई नहीं देते, परन्तु देवताओं का कल्याणकारी पक्ष मनुष्यों की आस्था एवं धार्मिक विश्वासों की जड़ में गहराई तक समा चुकी हैं।

5. हिन्दी–भाषा समृद्ध राष्ट्रीय–भाषा

भारत की राष्ट्रीय–भाषा हिन्दी, अनार्य भाषासमूह की सबसे सशक्त एवं समृद्ध भाषा बन चुकी है, जो देश के सभी अनार्य भाषाओं के बीच संपर्क स्थापित करने का माध्यम बन चुकी है, भारत सरकार की राष्ट्रीय –नीतियों के तहत, राष्ट्रीय एकता कायम करने में हिन्दी भाषा महती भूमिका अदा करती है। इसके कई कारण हैं:–

- ❖ राष्ट्रीय–एकता को कायम करने के लिए सभी अनार्य भाषाओं के बीच कड़ी का काम करती है।
- ❖ हिन्दी राष्ट्रीय संबंधों को कायम करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।
- ❖ सिनेमा, टेलीविजन, रेडियो, टेलीफोन, पत्र–पत्रिकाओं, ज्ञान–विज्ञान की पुस्तकों, खेल–जगत् की आँखों देखा हाल जानने के लिए हिन्दी का महत्व अत्यधिक है।
- ❖ अन्तर्राष्ट्रीय–स्तर पर अपनी प्रतिभा की जानकारी देश–विदेशों तक फैलाने के लिए, सूचना एवं प्रसारण की भूमिका को बढ़ावा देने के लिए हिन्दी–भाषा का खास महत्व है।
- ❖ देश में एक रीति एवं नीति के अनुसार शासन–तंत्र के संचालन में आसानी के लिए हिन्दी ही श्रेयष्कर भाषा है, जो राष्ट्रीय एकता कायम करने में माध्यम का काम करती है।
- ❖ व्यापार, आयात–निर्यात को बढ़ावा देने, देश के किसी भी क्षेत्र में आवागमन की सुविधा के लिए इसका महत्व है।
- ❖ सरकारी कामों को आसान बनाने के लिए, बैंकिंग–व्यवस्था को मजबूत कर पूंजी–निवेश में लोगों को जागरूक करने के लिए राष्ट्रीय–स्तर की भाषा का होना अत्यन्त आवश्यक है, जिसमें हिन्दी–भाषा खरी उतरती है।

संसार की अनगिनत भाषाओं के सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि लगभग तीन हजार भाषाओं की पहचान हुई है, जिनमें सैकड़ों भाषाओं

का महत्व अपने समुदाय में बोलचाल तक सीमित है। कुछ भाषाओं का महत्व ज्ञान–विज्ञान से संबंधित होने के कारण कुछ साहित्यिक रचनाओं की गतिविधियों के कारण चर्चा में बनी रहती है तो कुछ राजनीति एवं शासन से प्रेरित भाषा की बातें करें तो संसार में इंग्लैंड की इंग्लिश–भाषा अंग्रेजी है, जिसका बोलबाला अभी भी है। भारत की गुलामी काल में भारत की राष्ट्रीय–भाषा अंग्रेजी याने इंग्लिश थी। उस समय भारत की महारानी, महारानी विक्टोरिया थी, जिसकी राजधानी कलकत्ता थी। भारत की महारानी होने के लिए महारानी विक्टोरिया का राज्याभिषेक 1 जनवरी 1877 ई0 में हुआ था। भारत की आजादी के बाद भारत छोड़ने के उपरान्त संसार के 54 राष्ट्रकुल की महारानी होने के लिए महारानी एजिलाबेथ का राज्याभिषेक 2 जून 1953 में हुआ है, एवं 16 स्वतंत्र राष्ट्रों की महारानी भी है। वह संसार में सबसे अधिक सालों तक शासन करनेवाली महारानी है। महारानी विक्टोरिया इनकी परदादी थीं, वह 95 सालों की हैं। इनका शासनाधिकार जितनी दूरी तक है, उतनी दूरी एवं उतने स्वतंत्र राष्ट्रों की राष्ट्रीय–भाषा अंग्रेजी है।

6. संसार की भाषाओं का वर्गीकरण

संसार की भाषाओं का वर्गीकरण किया जाता है, उनमें विशेष भाषा समूह हैं–सेमेटिक, हेमेटिक, तिब्बती, युराली, अल्ताई, द्रविड़, ऑस्ट्रोएशियाटिक, बांतु, काकेशियन, अमेरिकन, फिनलैंडी, एस्कीमो एवं भारोपीय (भारत–यूरोपीय) परिवार की भाषा। डॉ. जिन्दर सिंह मुण्डा, द्वारा लिखित 'हिन्दी और मुण्डारी व्याकरण का तुलनात्मक विवेचन' के अनुसार भारत की भाषाओं का अध्ययन भारोपीय अनार्य भाषा के अन्तर्गत किया जाता है। भारोपीय परिवार की भाषा के अन्तर्गत भारतीय प्रायद्वीप में बोली जानेवाली अनार्य–भाषा के अन्तर्गत 'भारत–ईरानी' शाखा आती है। इस शाखा के अन्तर्गत ईरान, इराक, अफगानिस्तान, कजाकिस्तान, तुर्किस्तान, उजबेकिस्तान आदि मरूस्थलीय देशों की भाषाओं को शामिल किया जाता है। इन्हीं भाषाओं का प्रवेश विभिन्न मार्गों से अलग–अलग समय में भारत के प्रायद्वीप में हुआ, जहाँ प्रारम्भ से ही ऑस्ट्रोएशियाटिक भाषा बोलनेवाले मुण्डा आदिवासियों का प्रदेश था। इनके बीच भारत में

पश्चिमी मरूस्थलीय देश के लोगों का आगमन हुआ, इसलिए इस भाषा परिवार की भाषा का नामकरण भाषा सर्वेक्षण करनेवाले भाषा–वैज्ञानिकों ने 'भारतीय ईरानी भाषा' कर दिया। किन्तु भारत– ईरानी – ईराकी भाषा के भारत में प्रवेश करते ही यह बाहरी, विदेशी अर्थात् अनार्य भाषा का रूप धरण कर लेती हैं, क्योंकि यह आदिकाल से ही मुण्डाओं का देश रहा था, जहाँ प्रारम्भ से ही ऑस्ट्रोएशियातिक भाषा समूह के आग्नेय प्रजाति के लोग निवास करते थे, उनकी भाषा मुण्डारी थी, एवं उनकी लिपि भी मुण्डारी–लिपि थी, पश्चिमी देशों के लोगों के भारत में प्रवेश करते ही यहाँ विदेशी अर्थात अनार्य भाषा का प्रवेश हो गया, जहाँ पहले से ही मोहन जोदड़ो–हडप्पा की सभ्यता एवं संस्कृति थी, इनकी उन्नत–भाषा मुण्डारी एवं उन्नत मुण्डारी–व्याकरण थी, जिसका अनुकरण अन्य भाषा–भाषियों ने भी किया है, यहां तक कि संस्कृत का व्याकरण भी मुण्डारी व्याकरण की कला पर आधारित है, इससे स्पष्ट है कि मुण्डारी भाषाओं में अग्रणी है, जो प्रारम्भ से ही व्याकरण के नियमों पर केन्द्रित है, जिसकी तुलना अन्य किसी भी भाषा से नहीं की जा सकती है। बाद के कालों में हजारों–लाखों की संख्या में बाहरी लोगों का मुण्डाओं के बीच आ धमकने के कारण एवं उनकी भाषा नहीं समझने के कारण मुण्डाओं का शोषण शुरू हो गया। उन पर शासन करने के लिए अलग–अलग दिशाओं से आये हुए विदेशी अनार्यों ने बल–बुद्धि लगा कर मुण्डाओं को तितर–वितर कर अन्य–अन्य दिशाओं में भागने को मजबूर कर दिया, इन कठिन परिस्थियों में वे अपनी भाषा, लिपि आदि की चिन्ता छोड़ कर जान बचा कर जंगल, पहाड़, पर्वत, नदियों के किनारे–किनारे जहाँ–तहाँ भारत के विभिन्न भागों में वास कर गए, जहाँ–जहाँ गए गांवों का नाम मुण्डारी भाषा में रखा, शेष संस्कृति, भाषा आदि को रीति–रिवाजों की मौसिक परम्परा में जीवित रखा। कालान्तर में ईरानी–इराकी शाखा की भाषा का नामकरण विभिन्न राज्यों, जातियों, क्षेत्रों के नाम पर पुनः कर दिया गया, इनमें विशेष हैं, सिंधी, पंजाबी, गुजराती, मराठी, बिहारी, राजस्थानी, उड़िया, बंगाली आदि। इन भाषा–भाषी लोगों का विस्तार विभिन्न कालों में छोटानागपुर के पठारी एवं वनों से आच्छादित भूभागों में हुआ। कुछ जीविका की खोज में गंगा, यमुना, सरस्वती, ब्रह्मपुत्र नदियों के किनारे बाढ़ द्वारा लायी गई मिट्टी–बालू से बनी मैदानी क्षेत्रों में वास किये।

इनकी भाषा मिश्रित होते–होते इतनी बदल गई कि नई–नई भाषाओं की उत्पत्ति हो गई, जैसे–भोजपुरी, मगही, कायस्थी, अंगिका, मैथिली आदि।

इसी प्रकार कई दलों में विभक्त होकर कई प्रकार की मिश्रित भाषा–भाषी लोगों का जंगल क्षेत्र में प्रविष्टि हुई तो उनकी भाषा जातियों में विभक्त होकर जाति सूचक भाषा बन गई। कुरमी, कोइरी जातियों की भाषा कुरमाली हो गई। इन्हीं जातियों का विस्तार नागवंशी प्रभावित क्षेत्रों में हुआ तो उनकी भाषा नागपुरी हो गई। इन्हीं मिश्रित दल में से जिन लोगों ने हजारीबाग, कोडरमा, रामगढ़, लातेहार, चतरा आदि क्षेत्रों में वास किया या आस–पास रहनेवाले अनार्यों की भाषा खोरठा हो गई। खोरठा भाषा की उत्पत्ति का कारण अज्ञात है, क्योंकि खोरठा जाति की पहचान अभी तक नहीं हुई है। इसी प्रकार खोरठा, कुरमाली, नागपुरी, बंगाली एवं तमाड़ क्षेत्र में रहनेवाले ऑस्ट्रोएशियाटिक भाषा–परिवार के लोगों की तमाड़िया मुण्डारी आदि भाषाओं के सम्मिश्रण से पंचपरगनिया–भाषा के रूप में एक अलग पहचान मिली है। ये पाँच परगना हैं–बुण्डू, तमाड़, सोनाहातु, राहे एवं सिल्ली।

भारतवर्ष में जितनी प्रकार की भाषाएँ हैं, मुण्डारी भाषा को छोड़कर वे सभी अनार्य. भाषाएँ हैं। दक्षिण भारत में भी समुद्री मार्ग एवं नदियों के किनारे–किनारे इसी शाखा के लोगों की प्रविष्टि विभिन्न कालों में गुजरात, महाराष्ट्र, तमिनाडु आदि क्षेत्रों में हुई। इनकी भाषा तमिल गुजराती, मराठी बहुल लोगों के कारण मराठी, कन्नड़, तेलगू, तमिल आदि भिन्न–भिन्न किस्म की भाषा की उत्पत्ति हुई। इनकी भाषा में साम्य एवं वैषम्य दिखाई देती है। इन्हीं अनार्य–समूह की एक अन्य प्रकार की भाषा द्रविड़ियन लोगों की है, जिनकी भाषा 'कुड़ुख' है एवं द्रविड़ जाति के रूप में उन्हें पहचान मिली है, किन्तु छोटानागपुर के आदिवासियों के बीच उराँव जाति के रूप में पहचान मिली। वस्तुतः उराँव जाति की पहचान खेती के लिए दिन–रात मेहनत करने वालों के लिए है, दिन से रात एवं रात से दिन तक कठिन परिश्रम करनेवालों के लिए यह नाम दिया गया। उर का अर्थ 'कोड़ना' एवं आंग का अर्थ 'सुबह' होता है। उराँव दो शब्दों 'उर' एवं 'आंग' के मेल से बना है। जो लोग दिन से रात तक मिट्टी कोड़ते थे, पुनः रात से सुबह तक मिट्टी कोड़ते थे,

उनको यह नाम दिया गया। बाद में उर एवं आंग (उरांग या उरांव) एक खास जाति कुड़खों की पहचान बन गई। इनका निवास दक्षिणी छोटानागपुर के गुमला, लोहरदगा, पलामू, विशुनपुर, घाघरा, मांडर, लातेहार, डाल्टेनगंज क्षेत्रों में है। इनका आगमन का इतिहास के संबंध में इतिहासकारों ने स्पष्ट नहीं किया है। लेकिन कुछ इतिहासकारों ने इनका आगमन काल मुगलों के आगमन काल में बताया है तो कुछ ने शेरशाह सूरी के काल का बताया है। कुडुखों ने अपना आगमन या छोटानागपुर में प्रवेश का काल मुगलों के समय से बताया है। कुछ इतिहासकारों का कहना है कि रोहतासगढ़ की ओर से कुडुखों का प्रवेश हुआ है। इन बातों को लेकर लोगों में विभेद है। मुण्डाओं का भी दावा रोहतासगढ़ में है, मुण्डाओं के पूर्वजों द्वारा कैमूर पहाड़ पर रेहल ग्राम के निकट स्थित रोहतासगढ़ को बनाने एवं निवास करने का उल्लेख मुण्डारी लोक कथाओं में मिलता है। 16वीं शताब्दी में कुडुखों का वहाँ रहने की बात सामने आई है, 16वीं शताब्दी में मुगल बादशाल शेरशाह सूरी द्वारा गढ़ बनाने की बात भी बताई जाती है।

कैमूर पहाड़ जंगलों से आच्छादित क्षेत्र है। सासाराम जिला में रोहतासगढ़ स्थित है। वहाँ तक पहुँचना आसान नहीं है। रोहतासगढ़ खण्डहर बन चुका है। यह पेड़–पौधों एवं घनी झाड़ियों से ढंक चुकी है। इस समय वह निर्जन हो चुका है। वह जंगली जानवरों एवं सांपों का बसेरा बन चुका है। दिन में भी वहाँ पहुँच कर रूह काँप जाती है। रोहतासगढ़ के निकट मुण्डेश्वरी देवी का मंदिर है। यह मुण्डाओं का गढ़ था। यहाँ मुण्डेश्वरी देवी की पूजा मुण्डा पुजारी द्वारा की जाती थी। रोहतासगढ़ के समान सासाराम में भी एक गढ़ है। सासाराम मुण्डारी शब्द है। सासाराम का अर्थ है चिन्ता, ख्याल, जतन आदि। इन दोनों ही स्थानों में मुण्डाओं के वास करने का प्रमाण मुण्डारी नामों से होती है। गया के निकट भी एक ऊँचा पहाड़ है, इसका नाम प्राचीनकाल में 'बोंगाबुरू' था। इस समय इसका नाम 'प्रेतशिला' है। 'बोंगा' का अर्थ पूजा होता है तथा बुरू का अर्थ पहाड़ होता है। इस तरह इसका अर्थ हुआ पूजा किया जानेवाला पहाड़ है। ये स्थान आदिवासियों के अधीन थे। यह गढ़ अब मृत सी बनकर खड़ी है। यह तब से है, जब भारत में अनार्यों का आगमन नहीं हुआ था।

मुगलों के पहले डच, फ्रेंच, पुर्तगाल लोगों का प्रवेश यहाँ की कीमती खान–खनिजों (सोना, हीरा, चाँदी) आदि लेने के लिए हुआ था। वे यहाँ की कीमती वस्तुएँ ले लेते थे एवं मसालों को बदले में देकर चले जाते थे, क्योंकि अनगढ़ खनिजों को रखने की व्यवस्था उनके पास नहीं थी और न उनकी उपयोगिता थी। रुपये आदिवासियों की पहुँच से दूर थे, वस्तुविनिमय की प्रणाली थी, इसलिए आदिवासियों से कीमती वस्तुएँ लेकर बदले में मसालों को दे जाते थे, किन्तु आदिवासी काफी तेज बुद्धि वाले होते थे। उन्हें कब्जे में करना कठिन होता था, उन्हें भ्रष्ट करने के लिए महुआ से बनी दारू (शराब) पिलाकर उनमें नशे की आदत डाली। इसके सेवन की शुरुआत मुगलों एवं अंग्रेजों के काल के पहले से चली आ रही है, जब टाटा–बिड़ला आदि कम्पनी का आगमन हुआ। इसके पहले हंड़िया का मुनु (प्रथम) रस को देवताओं को अर्पित करने की परम्परा थी, इसका सेवन कर वे मदमस्त होकर जहाँ–तहाँ सोये नहीं फिरते थे, लेकिन गलत फायदा उठाने के लिए उनमें नशे की आदत डाल दी, नशे की लत में डालकर उन्हें बौद्धिक एवं आर्थिक रूप से कमजोर बनाया, फिर उनका मनोबल गिराया। उसके बाद उनकी जमीन लेकर बड़े–बड़े उद्योग खड़ी कर दी। उसके अन्दर काम करने के लिए बाहर से मजदूर बुलाया गया। स्थानीय लोग नशीली पदार्थों के सेवन कर अपनी सुध–बुध खोकर अपना अधिकार दूसरों के हाथों लुटाते रहे। इस तरह आदिवासी–वर्ग की कई पीढ़ियाँ गुजर गयीं। उनके वंशजों को कुछ पता नहीं चला कि आखिर इतना बड़ा परिवर्तन कैसे आ गया, जिन्होंने हजारों वर्षों तक दिकू कहे जानेवाले अनार्यों से दूरी बनाकर रखी, जिनका सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, रीति–रिवाजों से भिन्न सरोकार रहा, जिनकी जीने की कला अपनी स्वशासी पद्धति के अनुसार थी, दूसरी जातियों या समुदाय से पारस्परिक संबंध बनाने की पाबन्दी थी, सब कुछ भिन्न रहते हुए ऐसी कौन सी परिस्थिति थी, जो अपनी सीमाओं का अतिक्रमण कर अपने अस्तित्व की रक्षा का पाठ वे भूल गए, जिसे पूर्वजों ने अपनी अगली पीढ़ी को सौंपा था।

आज पूरा आदिवासी समाज आंदोलित हो उठा है कि क्या हमने खोया है और हमें क्या पाने की आवश्यकता है। समय बदल चुका है, पैरों में ठेस लगती है तो होश आता है, मुँह जलता है तो

दूध फूंक–फूंक कर पिया जाता है। फिर इतना संयमित एवं सावधान रहने पर भी उनके पक्ष में प्रतिदिन विपरीत कार्य होता है, मुँह से कही जाने एवं काम निष्पादन में फर्क रह ही जाती है। जो कभी जंगल का राजा था, दूसरों पर नियंत्रण रखता था, उसकी दशा निरीह पशु की तरह हो गयी, उसका शिकार करने के लिए चारों दिशाओं से खूंखार हायना ताक लगाये हैं जो उस निरीह को शिकार करने के लिए दौड़े चले आये हैं, कोई उसका पैर खींच रहा है, कोई पूँछ, कोई सिर, वह अपनी जान बचाने के लिए चारों ओर हाथ– पाँव मार रहा है, और वह विवश है, लाचार है, चारों ओर उसकी जान के हत्यारों से शरीर को बोटी–बोटी कर देनेवालों से वह संघर्ष करता है। अंत में दस मिनट के अन्दर सबकुछ शान्त हो जाता है। इसके विपरीत इस दावत में शामिल पशु प्रसन्न हो उठते हैं। उसी प्रकार आदिवासी की स्थिति हो गई है। वह चारों ओर समस्याओं से घिर चुका है, एक सुलझे तो दूसरी समस्या उत्पन्न कर दी जाती है। समस्याओं के ऊपर और समस्याएँ आ जाती हैं। जंगल बचाये तो जमीन चली जा रही है, जमीन बचाये तो नौकरी, रोजगार चली जा रही है। रोजगार बचाये तो अधिकार चले जा रहे हैं। अधिकार बचाना चाहे तो रीति–नीति लूटी जा रही है, जाति की रक्षा करे तो धर्म लूटी जा रही है, सरना धर्म छीन कर हिन्दू या ईसाई बना दिया जा रहा है। इसी धर्म लूटने के षड्यंत्र के कारण आदिवासियों को 'आदिधर्म' कोड नहीं मिल रहा है। कुछ अदूरदर्शी लोग सरना–कोड की माँग कर रहे हैं, सरना एक पूजा–स्थल है, पूजा–स्थल के नाम पर सरना–धर्म कोड की माँग करना गलत है, यदि सरना–धर्म कोड की माँग को सही ठहराया जाए तो गिरजा–धर्म, मंदिर–धर्म, गुरूद्वारा –धर्म, मस्जिद–धर्म आदि भी हो सकता है। झारखण्ड में निवास करने वाले आदिवासियों को सरकार से सरना धर्म–कोड की माँग न कर आदिधर्म – कोड की माँग करनी चाहिए, जिसके अन्तर्गत भारत–वर्ष के कोने–कोने में निवास करने वाले सभी आदिधर्म, प्राचीन धर्म, प्रकृति धर्म आदि, मानने वालों को शामिल किया जाना चाहिए, क्योंकि संसार के जीव–जन्तुओं, पशु–पक्षियों, पेड़–पौधों को जन जीवन देने वाली, जीव–जन्तुओं को चलायमान एवं संचालित करने वाली पृथ्वी, जल, जंगल, वायु एवं ताय (सूर्य का प्रकाश) से बढ़ कर कोई शक्ति

या ताकत संसार में नहीं है, आदिवासी इन्हीं प्राकृतिक या नैसर्गिक शक्तियों की पूजा कर उन पर विश्वास करते हैं, जिन शक्तियों पर पूरी सृष्टि एवं जीव–जगत आश्रित है जिन पर आकाश–पाताल, समुद्र, नदी–नाला, पहाड़–पर्वत, गढ़ा–ढोढ़ा, मैंदान–तराई, जंगल–झाड़, झूंड़ आदि में निःस्वार्थ कल्याणकारी उपादान छिपी हुई है, जब कि आदिधर्म के अतिरिक्त दूसरे धर्मों में व्यक्तिगत, पारिवारिक या अपने सामाजिक स्तर पर कल्याण की भावना छिपी रहती है तथा लोभ, क्रोध, मोह–माया, ईर्ष्या–द्वेष, झूठ–फरेब, लूट–खसोट, कुकर्मों, हत्या–दोष आदि के कारण मृत्यु–लोक में दण्ड पाने के भय से धार्मिक–अनुष्ठान करते हैं तथा मोक्ष के लिए अपने सांसारिक देवी–देवताओं से अर्जी–मिन्नत करते हैं, इस तरह आदिवासियों का 'आदिधर्म' से किसी अन्य धर्म की तुलना नहीं की जा सकती है, आदिवासियों का आदिधर्म अनोखा धर्म है, अतः इसकी पहचान को बनाये रखना आवश्यक है, इसलिये आदिवासियों को आदिधर्म कोड मिलना ही चाहिए।

हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, जैन, बौद्ध किसी भी धर्म कोड में शामिल कर आदिवासियों के अस्तित्व को मिटाने का, समाप्त करने की देशव्यापी योजना बनायी जा रही है कि कभी वह अपने–आप को आदिवासी न कह पाये, याने भारत का आदि निवासी या मूल निवासी न कह पाये। उसका अस्तित्व लम्बे समय में समाप्त हो जाए तब वर्तमान व्यवस्था के अनुसार वह या तो वह हिन्दू हो जाय या ईसाई धर्म में विलय होकर अपनी पहचान तक खो दे। धर्म बदलने के खेल में ईसाइयों ने हजार–हजार धर्म प्रचारकों को नियुक्त कर लिया या तो उन्हें हिन्दू बनाने के लिए चौक चौराहों पर पंडित पुजारी के रूप में धर्म प्रचार का ठेका दे दिया। जबकि इन दोनों ही धर्म में कोई समानता नहीं, एक प्रकृति का पूजक है तो दूसरा मूर्तियों की पूजा करनेवाला। दोनों के विश्वास में काफी मतभेद है। प्रकृति का मतलब लोग समझते हैं जंगल, पहाड़, नदी, हवा, आकाश आदि। ये तत्व नैसर्गिक हैं, इनके अन्दर अदृश्य रूप में छुपी हुई प्राकृतिक शक्तियों की आदिवासी पूजा करते हैं। वे शक्तियों के पूजक हैं।

7. राजतंत्र पर लोकतंत्र का अंकुश

आदिवासी राजतंत्र के पोषक थे। पड़हा व्यवस्था द्वारा देश में उनका शासन चलता था। प्रजातंत्र में उनलोगों पर अन्य का प्रशासन चलता है, याने गुलामी का एक अलग ही स्वरूप है। पहले छोटे–छोटे राजाओं के अधीन जनता काम करती थी, अब प्रजातंत्र में उन सब छोटे–छोटे राजाओं के ऊपर एक महाराजा अर्थात प्रधानमंत्री होते हैं। पूरे देश में एक रीति, एक नीति लागू हो जाती है, कायदे–कानून में समानता आ जाती है। आदिवासियों की पंचायती अलिखित व्यवस्थाा ही आज व्यवस्थित एवं लिखित रूप में भारत का संविधान कही जाने लगी है, जो विभिन्न कंडिकाओं में विभक्त हैं, पंचायती कानून व्यवस्था को ही संवर्द्धित एवं संशोधित रूप में स्वीकार कर लिया गया है। फर्क इतना ही है कि यह पंचायती कानून–व्यवस्था निम्न स्तर पर अलिखित रूप में केवल आदिवासियों के बीच लागू स्वशासी संवैधानिक–व्यवस्था थी, जबकि लोकतंत्र का संवैधानिक –व्यवस्था देश के अन्दर निवास करनेवाली सभी जातियों एवं सम्प्रदाय के बीच समान रूप से लिखित रूप में लागू हो गयी है। पंचायती–व्यवस्था का लाभ केवल आदिवासी उठा सकते थे, बाहर से आये लोगों पर यह व्यवस्था लागू नहीं होती थी, जिससे केवल आदिवासियों को ही लाभ मिलने की व्यवस्था थी। इन्हीं पंचायती व्यवस्था को भारत सरकार ने लिखित एवं स्वीकृत रूप में स्वशासन द्वारा आदिवासियों के विकास के लिए गाँव–गाँव में पाँचवीं एवं छठी अनुसूची का संवैधानिक अधिकार देकर उनके बीच जागृति फैलाने के लिए ऊँचे–ऊँचे पत्थरों पर उकेर कर अधिकार समर्पित किया था, आदिवासियों को प्राप्त अधिकारों की धज्जी उड़ाने एवं आदिवासियों की आवाज को दबाने के लिए वृहद् रूप से प्रशासनिक हथकंडा अपनाकर आदिवासियों के हक एवं अधिकारों का दमन हुआ, जो हाल के 2018 वर्ष में देखने एवं सुनने को मिला था, जो भविष्य के लिए एक लकीर के समान साबित हुई। इसके बाद आदिवासियों को समर्थन मिलने एवं उनके विकास का रास्ता साफ भी हो सकता है।

छोटानागपुर के इतिहास के तह में कई सच्चाइयाँ दफन हो चुकी हैं। पहले छोटानागपुर को यहाँ हीरा प्राप्त होने के कारण हीरानागपुर

कहा तो कभी सोनानागपुर तो कभी छोटानागपुर, तो कभी झूंड खण्ड तो कभी झारखण्ड नाम दिया गया। यहाँ के निवासी बड़े प्यार से राज्य का समय–समय पर अलग–अलग नाम दिया, अब यहाँ की कीमती खनिजों को अलग–अलग विदेशियों ने विभिन्न कालों में ले जाते रहे, अब यहाँ हीरा नहीं मिलता है, इसलिए हीरानागपुर नाम शोभा नहीं देता। इस प्रांत का नामकरण जंगल झाड़–झूंड से परिपूर्ण होने के कारण अब झारखंड या झूंडखंड दे दिया गया, जो यहाँ की प्राकृतिक परिदृश्य के अनुसार सटीक बैठती है, किन्तु भविष्य में यह नाम भी बदल जाएगी, इसमें कोई संदेह नहीं, यहाँ के खान–खनिजों में लोहा, कोयला, सोना, मैंगनीज, बॉक्साइड, तांबा, यूरेनियम, जंगल के वृक्ष, मिट्टी, मोरम, नदी का बालू प्रतिदिन बाहर के राज्यों में ले जाया जा रहा है। इसे रोकने के काम के लिए सरकार के पास कोई योजना नहीं है। संसार के लोगों की नजर यहाँ के खान–खनिजों पर टिकी हुई है, राज्य को प्रगतिशील बनाने के लिए देश–विदेशों से पूंजीपतियों, निवेशकों को आमंत्रित किया जा रहा है कि यहाँ आकर पूंजी निवेश करें, कारखाना–उद्योग लगायें एवं यहाँ के लोगों को रोजगार एवं व्यवसाय का अवसर प्रदान करें कि यथाशीघ्र यहाँ के लोगों की आर्थिक स्थिति में सुधार आये, जिससे सरकार की योजना 'सबका साथ, सबका विकास' कार्यक्रम सफल हो।

अंग्रेजों का आगमन भी इसी प्रकार से हुआ था। पहले कीमती खान–खनिजों, जमीन, धर्म–संस्कृति, उनके स्वत्व एवं राज्य अधिकारों को लूटने के बाद उन्हें गुलाम बनाकर कई सौ सालों तक उन पर शासन भी चलाया, ईसाई धर्म के नाम पर गिरजाघर बनवाया कि वे विनती प्रार्थना में लीन हो जाएँ कि अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों एवं शोषण को भी नजरअंदाज कर लेवें। इस षड्यंत्रकारी व्यवहारों से आदिवासियों की एकता टूट गई, आदिवासी दो खण्डों में विभाजित हो गए, उनमें एक समूह अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए प्राचीन परम्पराओं के साथ चिपके रहे, दूसरा समूह आदिवासी होने का चोला बदलकर अंग्रेज ईसाइयों का दामन थामकर परम्परावादियों से अलग हो गए।

आदिवासियों की एकता तोड़कर उन पर शासन चलाने के लिए पूर्वी क्षेत्र के आदिवासियों को बंगाल में शामिल कर लिया, दक्षिणी क्षेत्र

के आदिवासियों को उड़ीसा राज्य का नागरिक बना दिया, पश्चिम क्षेत्र के आदिवासियों को मध्यप्रदेश एवं उत्तर प्रदेश का नागरिक बना दिया, अन्य–अन्य राज्यों के नागरिक बनने के बाद उनकी भाषा उड़िया, बंगला आदि हो गई, भाषा की एकता भंग होते ही उनकी पड़हा–पंचायती राज्य –व्यवस्था नाम की राजनीतिक जड़ें कमजोर होकर छिन्न–भिन्न हो गई। धीरे–धीरे उनका अधिकार छिनता गया, उनके अधिकारों के छीने जाने पर उनके अस्तित्व पर भी संकट आ गया।

दक्षिण छोटानागपुर से सटे मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ में रहनेवाले अधिकांश मुण्डाओं ने कुड़ुख भाषा को अपना लिया, उड़ीसा राज्य से सटे क्षेत्र में रहनेवालों ने उड़िया भाषा को अपना लिया, बंगाल राज्य से सटे क्षेत्रों में रहनेवालों ने बंगला भाषा को अपना लिया। छोटानागपुर के रामगढ़, हजारीबाग, कोडरमा, पलामू, चतरा, डाल्टेनगंज आदि उत्तरी–पश्चिमी क्षेत्रों में रहनेवाले मुण्डाओं ने खोरठा, कुरमाली, मगही, भोजपुरी आदि भाषाओं को अपना लिया, लेकिन मुण्डारी भाषा को किसी भी अनार्य भाषी लोगों ने नहीं अपनाया। इस तरह मुण्डाओं की जातीय पहचान मिटती चली गई तथा जनसंख्या भी घटती चली गई। इतना ही नहीं, जिन लोगों ने जनगणना कोड के नाम पर अन्य कॉलम या 'हिन्दू' धर्म का चुनाव किया, वे आदिवासी सूची से बाहर हो गए।

मुण्डाओं की घटती जनसंख्या के अनेकानेक कारण हैं, उनमें एक कारण है, मुण्डा युवतियों का गैर जातियों के साथ विवाह का विधान है। जो युवती अन्तर्जातीय विवाह करती है, उसे समाज से बहिष्कार की सजा मिलती है, उसके साथ हुक्का–पानी बंद हो जाता है, किन्तु यदि युवक किसी भी आदिवासी कहलानेवाली युवती से (भिन्न जाति हो तो) विवाह कर लेता है तो सामाजिक विधि–विधान का पालन कर स्वजाति बनाकर स्वीकार कर लिया जाता है, किन्तु युवक दिकु, हिन्दू या तुर्क युवती से विवाह कर लेता है तो उस युवती को घर में नहीं रखा जाता है, उसे घर के पूजा–गृह (आदिंग –गृह, रसोई– गृह) में या विवाह संबंधी पूजा कार्यों में शामिल नहीं किया जाता है, यहाँ तक कि मसना–स्थान में मृतकों के समूह में भी शामिल नहीं किया जाता है।

आदिवासियों का अनुपात घटने का एक कारण और भी है जैसे

कठोर कर्मकाण्डों का होना, पड़हा पंचायती व्यवस्था के अन्तर्गत परम्परागत कानूनों का होना, अन्तर्जातीय विवाह को छूत की बीमारी की तरह हेय दृष्टि से देखना, यह व्यवस्था प्रकृति एवं प्रवृत्ति–जन्य है, किसी जंगली पशु–पक्षियों के बच्चों या चूजों को कोई मनुष्य छू लेता है तो उसके माता–पिता लात मार–मार कर उन्हें नोच–नोच कर घोंसलों से गिराकर मरने के लिए छोड़ देते हैं, कुछ इसी तरह का व्यवहार मुण्डा माता–पिता अपने ही बच्चों से करने लगते हैं, समाज के लोग एवं माता–पिता उस जाति–अपराधी संतान को माफ नहीं करते, उन्हें अपने यहाँ शरण देने से इन्कार कर देते हैं। इसी प्रकार की प्रकृतिजन्य परम्परा मुण्डाओं के बीच है। दूसरों के द्वारा छुए हुए कन्याओं को छूत मान लेते हैं, इसीलिए कोई भी युवती दूसरों द्वारा पत्नी रूप में अपनायी गई हो तो वह माता–पिता के घर लौट नहीं पाती है, अतः अपनी परम्परागत सामाजिक व्यवस्था को स्वच्छ बनाये रखने के लिए जाति समान, किन्तु भिन्न गोत्रियों से विवाह का विधान आदिवासियों ने बनाया है। दूसरों द्वारा अपनायी गयी युवती अपना घर लौटकर नहीं आती है, घर से दूर असुरक्षा के माहौल में रहनेवाली युवती के साथ कुछ भी हो सकता है। युवतियाँ ही माता होती हैं, कुल की रक्षक होती हैं, वंश वृद्धि करनेवाली होती हैं, उन्हें सुरक्षा का माहौल न दे पाने के कारण जनसंख्या घटने लगती है।

आदिवासियों की परम्परा के अनुसार युवतियाँ जंगल के पशु–पक्षियों की तरह आजाद होती हैं, उन्हें घर या बाहर के सभी प्रकार के कामों को करने की आजादी होती है। धार्मिक, सांस्कृतिक कार्यक्रमों में उनकी मुख्य भूमिका होती है, वे परिवार के आर्थिक स्रोतों को उत्पन्न करनेवाली होती हैं। इतनी जिम्मेदारियों का बोझ उठानेवाली महिलाओं एवं युवतियों को घर में कैद कर नहीं रखा जा सकता है। आदिवासी महिलाओं को आजाद रखकर सभी प्रकार के कामों की जिम्मेवारी सौंपी जाती है कि वे सशक्त बनी रहें, आत्मनिर्भर बनी रह सकें, माता–पिता की सेवा कर सकें, दादा–दादियों की सहायता कर सकें, पशु–पक्षियों की देखभाल कर सकें, कुटुम्ब–मेहमानों का स्वागत–सत्कार कर सकें। इस तरह माता–पिता के घर में रहकर सुशील, संयमित एवं सभी प्रकार के गुणों से परिपूर्ण बनी रहे, जिससे ससुराल में सभी प्रकार के संकटों को झेलती हुई अपने परिवार एवं अपने संतानों की परवरिश कर सकें एवं किसी प्रकार की परिस्थितियों

को सहन करने की शक्ति उसे प्राप्त हो, इस तरह जाने–अनजाने पुत्री जीवन में सदा सशक्त बने रहने की सीख माता–पिता के घर से ही प्राप्त करती है।

मुण्डाओं में सामाजिक संघर्ष एवं चेतना का आना अनार्य लोगों की देन थी, प्रारम्भ से ही वे जहाँ रहें, बाहरी तत्वों द्वारा उन पर अत्याचारों का सिलसिला चलता रहा है, जिसे अभी भी अनुभव किया जा सकता है। वे जिधर गए, उधर बाहरी लोगों ने पीछा किया, बाहरी लोगों ने जीविकोपार्जन के लिए खेती–कृषि को आधार नहीं बनाया, फलतः जहाँ–जहाँ आदिवासी गए, वहाँ–वहाँ वे पहुँच कर उनके मेहनत एवं खून पसीनों की कमाई का हिस्सा बनते गए, क्योंकि बाहरी एवं पश्चिमी देश के लोगों ने कभी खेती करना नहीं जाना और खेती की कला उन्हें विरासत में नहीं मिली थी। वे घुमन्तू जीवन जीनेवाले थे। घूमते–फिरते जो भी खाना मिल जाए, उसे खाते थे, माँस भक्षण में उनकी विशेष रुचि थी, जो आज भी देखने–सुनने को मिलती है, क्योंकि उनके पास खेती की जमीन नहीं थी, पशुपालन एवं व्यापार कर जीवनयापन करते थे। गधों–घोड़ों से सामान ढोने का काम करते थे, उनका समाज व्यवस्थित नहीं था, उनके जीने–खाने रहने की कोई नीति या परम्परा नहीं थी, इसलिए मनमाने ढंग से उनका जीवन चलता था। यही कारण है कि वे लोग अपने बेटे–बेटियों का विवाह किसी भी युवक से करते हैं। उनकी कोई जाति–बिरादरी एवं गोत्र व्यवस्था नहीं थी। इसलिए अव्यवस्थित समाज से आदिवासी वैवाहिक संबंध स्थापित नहीं करते, बल्कि उनसे कोसों दूर रहते थे, उनका कोई आशियाना न होने के कारण पता ठिकाना भी नहीं था। उनकी न कोई भाषा थी न कोई संस्कृति थी। भाषा भी थी तो वह इतनी मिश्रित थी कि उनकी पहचान मुश्किल थी।

प्राचीन भारतीय प्रायद्वीप पूरी तरह वनों से आच्छादित था। अनार्यों का भारत में प्रवेश के बाद घने जंगलों को वे साफ कर अतिक्रमण करते गए तो आदिवासी जंगल की ओर ही अपनी सुरक्षा के लिए प्रवेश करते चले गए। जंगल को ही अपना आशियाना समझा, किन्तु बाढ़ के द्वारा लायी गई बालू निर्मित सपाट मैदान में अनार्यों का वास होता गया। इसके विपरीत आदिवासियों को जंगल में रहना पसन्द था, कभी राम जन्मभूमि

अयोध्या वनों से घिरा था, किन्तु आज वे पेड़–पौधे गायब हो गए हैं। राजा दशरथ जंगल के राजा थे, जंगल में ही राज्य करते थे। उन्होंने अपने पुत्र राम को चौदह वर्षों के लिए वनवास की आज्ञा दी थी, वे वन आज देखने को नहीं मिलते हैं, क्योंकि उन्होंने जंगल को उजाड़ कर नष्ट कर दिया है, परन्तु जिस क्षेत्र में आदिवासी रहते हैं, वहाँ अभी भी जंगल सुरक्षित हैं।

आदिवासी ही पेड़–पौधों की रक्षा करते हैं, वे प्रकृति के संरक्षक होते हैं, जबकि अन्य लोग जंगल उजाड़ते हैं। जल एवं वायु को प्रदूषित करते हैं, नदी–नाला, पोखर, तालाब आदि में कूड़ा–कचरा डाल देते हैं। इसके उदाहरण आये दिन देखने को मिलते हैं। दशहरा, छठ पूजा के अवसर पर कई हजार मूर्तियाँ टाटी–दमड़ा, चुका, फूल–पत्तों, नारियल, अगरबत्ती आदि अनेक प्रकार के अवशेषों को पानी में विसर्जित कर देते हैं। पर्व–त्यौहारों के अवसर पर अवशिष्ट पदार्थों को नदी–नाला, तालाबों में विसर्जित करने की परम्परा प्रदूषण का अत्यन्त घिनौना कृत्य एवं संस्कृति है। एक ओर स्वच्छता एवं शुद्धिकरण की सीख देते हैं, परन्तु गंदगी फैलाने वाले स्वयं स्वच्छ बने रहने की सोचते हैं, एवं दूसरों को सड़ांध एवं दुर्गन्धयुक्त पानी को पीने एवं स्नान करने, कपड़े धोने के लिए मजबूर ही नहीं करते, वरण धरती को प्रदूषित बना रहे हैं। वे प्रतिदिन अपने घरों से निकले अनगिनत कूड़े–कचरों, सब्जी, अंडों के छिलके, प्लास्टिक के थैलों एवं बोरों को नदी–नाला में बहने के लिए छोड़ देते हैं, जल–प्रदूषण एवं वायु –प्रदूषण इतना कि कोई भी पानी के जीव का दम घुट सकता है। जिस जल का सेवन हम प्रतिदिन करते हैं, वह आखिर हमारे ही घरों से निकली मल–मूत्र, साबुन–सर्फ, घुला–मिला प्रदूषित पानी ही तो सप्लाई नल के द्वारा हमारे घरों तक पहुँचती है।

एक मनुष्य दूसरे के लिए क्या दे सकता है, सोचने की बातें हैं, मनुष्य किसी के लिए वह सब नहीं कर सकता है, जो स्वयं प्रकृति से हमें मिलती है। प्रकृति की नैसर्गिक देन का उपयोग करने का सबको अधिकार है कि प्रत्येक को शुद्ध हवा–पानी एवं अन्न प्राप्त हो। एक ओर ऊँचे–स्तर पर स्वच्छता अभियान चलाकर स्वच्छ बने रहने की नसीहत दी जाती है, खुद पाताल–लोक से पानी खींचकर, बाहर निकाल कर स्वच्छ बने रहते हैं।

बहुत से लोग वह सब नहीं कर सकते, वे उन्हीं नदी–नालों, पोखर–तालाब के पास जाकर अपनी जरूरतें पूरी करते हैं, उनमें आदिवासियों का नाम सबसे पहले आता है, उनमें जल, जंगल, जमीन, वायु के अपनत्व का भाव जुड़ा है, वे पृथ्वी को माता समझते हैं, अन्नदात्री समझते हैं, जीव जन्तुओं का आश्रयस्थली समझते हैं, पानी को शरीर का पोषक मानते हैं, वायु को प्राणदाता मानते हैं, इतना ही नहीं समुद्री वायु, आँधी–तूफान एवं मौसम को जंगल, पहाड़–पर्वत नियंत्रित करते हैं। इस तरह प्रकृतिप्रदत्त प्रत्येक अवयवों में कल्याणकारी भावना छुपी हुई रहती है, इसलिए प्रकृति प्रदत्त अवयवों की सुरक्षा के लिए वे सजग रहते हैं। इन प्राकृतिक अवयवों के बिना मनुष्य एवं जीव–जन्तुओं का जीना असम्भव है।

आदिवासियों में स्वभाव से ही कल्याणकारी भावना छिपी रहती है। वे नदी–नालों, तालाब, पोखर में प्रदूषण नहीं फैलाते, बल्कि अपने घरों से पशु–पक्षियों, भेड़–बकरियों के अवशिष्ट को खाद गड्ढा में डाल देते हैं, जो खेतों को उपजाऊ बनाने के काम आते हैं। ये आदतें आदिवासियों की परम्परा का हिस्सा हैं। इसके विपरीत अन्य लोगों में हवा, पानी, जंगल, पहाड़ों के प्रति कोई संवेदना नहीं होती है, वे प्रतिदिन पहाड़–पर्वतों को तोड़ कर नष्ट कर रहे हैं, जंगल उजाड़ रहे हैं, पानी को प्रदूषित कर पीने लायक नहीं छोड़ रहे हैं, मिट्‌टी पर कूड़े–कचरों का अम्बार लगाकर मिट्‌टी की उर्वरा शक्ति को नष्ट कर रहे हैं। एक मनुष्य दूसरे से खिलवाड़ कर रहा है, जाने–अनजाने मनुष्य ही मनुष्य का दुश्मन बन गया है।





लेखिका परिचय

नाम	– प्रो0 लगनी हेरेंज (सेवानिवृत्त), हिन्दी विभाग, डोरण्डा महाविद्यालय, राँची।
वर्तमान पता	– सरनाटोली, हतमा, पो0ओ0–राँची यूनिवर्सिटी, थाना–लालपुर, राँची।
जन्म तिथि एवं जन्मस्थान	– 12 जनवरी, 1950, खूँटी न्यायालय आवासीय प्रक्षेत्र, खूँटी।
पिता का पता	– स्व0 बहामन हेरेंज, ग्राम–धनामुंजी, पो0 जलटंडा, थाना–कर्रा, जिला खूँटी।
पिता का व्यवसाय	– बिहार सरकार के अधीन खूँटी, राँची, गुमला आदि जिलों के न्यायालयों में सरकारी सेवक, सेवानिवृत्त–1985 ई0।
माता का नाम	– स्व0 ऐंती हेरेंज।
प्रारम्भिक शिक्षा	– 1955 ई0 से 1960 ई0 तक लुथेरान मिडिल स्कूल, गुमला। 1961 ई0 से 1963 ई0 तक हारूहप्पा मिडिल स्कूल, हारूहप्पा, पो0–जलटंडा, थाना–कर्रा, जिला खूँटी।
मैट्रिक	– 1968 ई0 में मैट्रिक उत्तीर्ण उर्सुलाईन कोन्वेन्ट, खूँटी से।
स्नातक	– 1973 ई0 में स्नातक उत्तीर्ण, विषय – हिन्दी प्रतिष्ठा, संत जेवियर महाविद्यालय, राँची।
स्नातकोत्तर	– 1977 ई0 हिन्दी विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची
प्राध्यापिका	– 16 नवम्बर 1978 बिरसा महाविद्यालय, खूँटी।
सेवानिवृत्ति	– 31 जनवरी, 2012 में डोरण्डा महाविद्यालय, राँची से।
अवकाश प्राप्ति के पश्चात्	– समय का सदुपयोग करते हुए हिन्दी एवं झारखण्ड की जनजातीय भाषा मुण्डारी में कहानी, कविता, अनुवाद आदि साहित्यिक विधाओं पर रचना कार्य एवं सामाजिक गतिविधियों में संलग्न।

प्रकाशित पुस्तकों की सूची

1. मुण्डाओं का इतिहास धर्म एवं संस्कृति–2018
2. मुण्डारी बोल ज्ञान (भाग–1) 2016
3. मुण्डारी बोल ज्ञान (भाग–2) 2018
4. विविध कविता संकलन – संस्करण 2018
5. मुण्डारी हिन्दी कविता संग्रह, संस्करण 2018
6. मुण्डारी कविता दर्शन, भाग–1, 2018
7. नुतुम–नंगमेता (संज्ञा–सर्वनाम) 2018
8. लुटकुम हड़म लुटकुम बुढ़िया की कहानी (मुण्डारी–हिन्दी अनुवाद)–2018
9. जंगल की कहानियाँ–2018



Printed by National Printers

मुल्य – 100 रू. मात्र